

सज्जनचितवल्गुम

काव्यसंस्कृत

मुनिमल्लिषेणाचार्य्य रचित

टीका वा भाषा छन्दसहित

जो

पण्डित मेहरचन्द दास जैनी सुनपत नगर।

निवासीने प्रथमपदच्छेद-संस्कृतटीका-अ

न्वय-भाषाटीका कर फिर प्रतिश्लोक अनुक

ल भाषा छन्द बनाये

सो पुस्तक अमनसिंह जैनी सुनपत निवासीने पण्डितनीक

आज्ञानुसार अति शुद्धतासे इक स्वर यंत्रालय दिल्लीमें

मुद्रित कराई-सं० १९४६

इस पुस्तककी सरकारमें रजिष्टरी कराई गई

प्रथम बार छपी ३००

सांख्यजिन्मदित ॥॥

निवेदन

सकलगुण अवास पण्डित मेहरचन्द
 दास जैनी सुनपत नगर निवासी टी
 का कार वा भाषा छन्द रचितने अप
 नी परम दयालुता से हक कापी राइट
 इस पुस्तक टीका वा भाषा छन्द सहि
 त का मुक अमनसिंह जैनी को दे दिया
 है और इस पुस्तक की सरकारी कानू
 न के मुजिब सरकार में रजिस्टरी होग
 ई है अब कोई साहब इसके छापने
 का परिश्रम न करें जिस पुस्तक पर मे
 री मोहर नहोगी वह चोरी की जानी
 जायगी

आप का कृपा पात्र
 अमनसिंह जैनी

विज्ञापन

सज्जनचित्तवल्लभ काव्य संस्कृत मन्त्रिष्यणा
 चार्य्यकृत जोधर्मनीति अर्थात् मुनि उपदेश
 क विषयका ऐसी भली गीतिसे सम्पूरणा कि
 याहै मानो समुद्रको लघु पात्रमें भरदियाहै जिस
 को परगडत मेहरचंददास सुनपत नगर निवासा
 ने पदच्छेद-संस्कृतटीका-अन्वय-भाषाटीका-
 कर प्रतिश्लोक संस्कृत अनुकूल भाषा छंद वना
 कर इस पञ्चका अर्थ प्रकाशनी नामा टीका से
 ग्रन्थ अति शोभित कर दिया तिसकी सुन्दरता द
 खने पर ज्ञात होता है सो पुस्तक जिनपठ सेवक
 असन सिंह जेनी सुनपत नगर निवासीने जिनसे
 उन्नति वा अत्याभ्यासी जनता भाष्य बड़ा परिश्रम।
 कर मुद्रित करायाहै मील्य जिल्द साहित ॥॥ महसु
 लडाक इसके सिवायहै । निम्न स्थानसंमिल सर्तोह
 (दिल्ली कश्मीरी दरवाजा - अमनसिंह अज्ञानवास
 सुनपत में - परगडत मेहरचंद दास जेनी

विज्ञापन

भूधरजैनशतकभाषा

अतिउत्तमग्रन्थहैं इसमें भौतिक के अर्थहैं काहिं
संसार अवस्थाका कथन काहिं गुरु शिक्षा काव
रण काहिं फलकर्मकी प्रशंसा काहिं सप्तविषयकी
निन्दा काहिं सत्यकज्ञानचारित्र्यतादिककी भलाई
काहिं क्रोधमानमाया लोभहिंसादिककी बुराई कवि
ने जिस प्रयोजन के अंगकी लिखाहै उस्का पूरा रचि
त्रामखेंचकर दिखायाहै जिस जैनशतक को मैंने
बालबोधहेतु शब्दार्थ वा सरलार्थ टीकासै सुशो
भितकर टाइप छापेमें अतिसुन्दर कागज़ पर मु
द्रितसै मुद्रित करायाहै मौल्य जिल्द सहित ।

॥८॥ महसूल डाक जिम्मे स्वरीदारहै १० जिल्दके
मौल्यमें १ जिल्द मुफ्त दर्द जायगी नीचे लिखे
स्थानोंसे मिलेगी - देहलीमें - अमनसिंह अर्जी
नवीस कश्मीरी दरवाजा । सुनपतमें परिडल
मैहरचन्ददासजैनी - जिनधर्मपालकअमनसिंह

सज्जनचित्तवल्लभकाशुद्धाशुद्धपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
०	२	इमं	इमं	३३	२५	पुनर्निर्वे	पुनर्निर्वे
२	१७	नाम्नाः	नाम्ना			गता	गता
८	२	जायेत	जायेत्	३३	२६	दुर्गन्धि	दुर्गन्धि
१०	१	सदा	सदा	३३	२८	व्याख्याति	व्याख्याति
१०	४	सम्यक्	सम्यक्	३६	६	इयत्मेव	इयत्मेव
१२	२	जानना	त्यागना	३७	२८	पाप	पापं
१२	२०	अनेन	अनेन	३९	१३	स्त्रीभी	स्त्रीभी
१३	१	मन्यसे	मन्यसे	३४	४	मित्रा	मित्रा
१३	१	द्रव्योपा	द्रव्योपा	३६	१६	वं	त्वं
		जनचित्त	नचित्त	३६	१६	स्ममान	स्पर्ग
१५	१४	पशुः	पशुः	३६	२७	तान्येय	तान्येव
१७	१८	द्याप्य	द्याप्य	३६	२९	मित्रा	मित्रा
१८	१	शय्या	शय्या	३६	२९	पार	परि
१८	१	स्थाडल	स्थाडल	३७	१४	अविरात	अविगत
		भूमिषु	भूमिषु	३७	२०	सर्वत	सर्वज
१८	१२	वरणीयु	धरणीयु	३७	२१	पस्मे	धर्म
२६	१४	याववत	शववत	४०	८	लभसे	लभसे
२८	१६	गाष्टा	गोष्टी	४०	८	वपनं	वपनं
३०	११	शोणितसु	शोणितसु	४१	२१	नाहत	चादत
		कसभवम	कसभवम				

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	२	तै	मै	५८	१८	भक्षितुं	भक्षितु
४१	३		जोनहिं	६०	४	विश्वास	विश्वास
			डारंतबी			ता	तां
			जमहीए	६०	५	त	ते
			रधानल	६०	५	पुमर्थ	पुमर्थ
			हैनहवी	६०	६	गुस्तकव	गुस्तकव
			भतिहीना			चन	चनं
४१	१७	मोहपाश	मोहपाश	६०	६	शीर्ष	शीर्ष
४१	१८	आराधय	आराधय	६०	७	चत्	चेत्
४४	१८	सित्वा	वित्वा	६०	११	विश्वास	विश्वास
४७	५	वलीचरः	वलीचरः			ता	तां
४७	६	साक्या	साक्याः	६०	२०	प्राप्तिवि	प्राप्तिवि
५४	१२	कुल	कुल	६१	६	दुरता	दुरतः
५४	१६	मी	मीः	६२	१३	द्वेह	द्वेहः
५५	१२	रूपरत्न	रूपरत्न	६३	११	माकुरुः	माकुरु
		रङ्ग	रङ्ग	६४	१७	मल्लिपे	मल्लिपे
५५	१४	ईप्सायै	ईप्सायै	६४	२०	दुर्जगन्	दुर्जग
५५	१८	जलयान	जलयान	६८	६	तीन	नानै
५७	११	त्वं	त्वं			॥ इति ॥	

श्रीजिनायनमः

भूमिका

॥ दो० ॥ वन्दू श्रीजनपद केमल-प्रान्तिनीमनधार ।

। सुरवदायक दुरवजयकरन-असरराजन-आधार ।

विह्वज्जन चरणास्वुजरज-अमनासिंह जेन सुनपनन

नर निवासी धर्म प्रेरक कवि काविद जनों का सेवामें

निवेदन करता है कि इस पञ्चमकाल विपे वज्जतवाँड

पुरुष है जो प्राकृत वा संस्कृत विद्या के ज्ञाता हों अज्ञान ज

नों के लाभार्थ धर्म की उन्नति में अपना काल व्यर्तान कर

के आनंद मानते हों सो इस काल में धर्म स्त्री ही सकल गु

ण निवास श्री १०१ पण्डित मिहरचंद्र दास जेनी मुनपन

निवासीने मम प्रार्थनार्थ अति अनुग्रह कर श्री सज्ज

नचित्त बल्लभ संस्धान काव्य मुनिवर श्री मल्लिपेणा ।

चार्य कृत का (जो पच्चीस श्लोक सार्दल विकीडित छ

न्द में मुनि उपदेशक अति उत्तम ग्रन्थ है) टीका किया है

जिसका क्रम यह है प्रथम पदच्छन्द पुनः संस्धान टी

का जिसमें शब्द-कादसग पर्याय शब्द रक्वाह पु

नः संस्धान में अन्वय किया है फिर साया वानिकर्म अथ

किया है फिर शतश्लोक का भाषाछन्द से अनुवाद कर अ

र्थ प्रकाशिका नाम धरा है और शान्तिक मु० ३ सं० १६७

में पूरा किया जहाँ तक मरा विचार है इस उत्तमगीत की

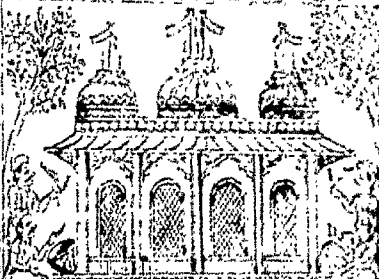
टीका अब लो किसी विद्वान् ने नहीं देखी ऐस गुणी जनों

को कोय कोयी धन्यवाद दे प्रार्थना है किये उत्तम टीका

सर्व छोटों बड़ों को प्रिय हो संसार में प्रसिद्ध हो ॥

इस ग्रंथ की टीका की समस्या

श्रङ्ख	समस्या	प्रयोजन
१	अ	अव्ययः
२	यु-अ	पूर्वकालिक अव्ययः
३	भ-अ	भविष्यत्कालिक अव्ययः
४	क्रि	क्रिया
५	क्रि-वि	क्रिया विशेषण
६	१—	लकीर के बाने अंक से विभक्ति जानना सो प्रथमा से सप्तमी पर्यन्त जैसा अंक देखो तैसे जानना।
७	—१	लकीर के दाहने अंक से विभक्ति के वचन जानना सो एक से तीन तक जैसा देखो वैसा जानना।



श्रीजिनायनमः

मूल

नत्वा वीरजितं जगत्त्रय गुरुम्मु
क्ति श्रियो वल्लभं । पुण्येषु क्षय
नीति वारा निवहं संसार दुःखा
पहं । वक्ष्येभव्य जन प्रवाधजन
नं ग्रन्थं समासादहं । नाम्नासज्ज
न चित्त वल्लभमिमं शृण्वन्तु स
त्तोजनाः ॥२॥ [टीका]

महावीरं नमस्कृत्य। गुरुत्वं वारणी सरस्वतीं।
सत्तचित्त प्रियस्यसां। कराम्यर्थ प्रकाशिकां।

पदच्छेदः

नत्वा वीरजितं जगत्त्रय गुरुं मुक्तिश्रियो वल्लभं
पुण्येषु क्षयनीतिवारा निवहं संसारदुःखापहं

वक्ष्ये भव्यजनप्रबोधजननं ग्रन्थसमासात्
 अहं नाम्ना संज्जनचित्तबल्लभं इमं शृण्व
 न्तु सन्तः जनाः ॥१॥

संस्कृतटीका

[नत्वा] प्रणम्य [वीरजिनं] श्रीमहावीरस्वामिनमन्त्य तीर्थेश्वरं [जगत्त्रयगुरुं] उद्घाथोमध्यवर्तिनां जगतां हितोपदेशकं [मुक्तिश्रियः] मोक्षलक्ष्याः [बल्लभं] प्रियवरं-भर्तारं [पुष्येषु क्षयनीतिवाणनिवहं] कामस्य शोषणत्वापनोच्चादनमोहनवशीकरारूपानां पञ्चपाशाणां नाशाय ब्रह्मचर्यवाणस्य धारकं [संसारदुःखापहं] जगतो जन्ममरणजरादिजानां चतुर्षु गतिषूद्भवानां कष्टानां निवारकं [वक्ष्ये] कथयिष्ये [भव्यजनप्रबोधजननं] मोक्षगामिनां पुरुषाणां ज्ञानप्रदं [ग्रन्थं] शास्त्रं [समासात्] संक्षिप्तान् [अहं] मन्त्रिप्रेषणाचार्यः [नाम्नाः] अभिधेयेन [संज्जनचित्तबल्लभं] सत्पुरुषाणां मनसां प्रियं अथवा संज्जनचित्तबल्लभनामानं [इमं] वक्ष्यमाणं [शृण्वन्तु] करणविषयीभूतं कुर्वन्तु ॥१॥

अन्वयः

अहम्मन्त्रियेणाचार्य्य दुःसं ग्रन्थं वन्द्यं (किं क
 त्वा) वीरजिनं नत्वा (कथम्भूतं वीरजिनं)
 जगन्नाथगुरुं (पुनः कथम्भूतं) मुक्तिं श्रियो
 वल्लभं (पुनः कथम्भूतं) पुण्यपुस्तकं नीति
 वारा निवहं (पुनः कथम्भूतं) संसारदुःखा
 पहं (कथम्भूतं ग्रन्थं) भव्यजन प्रनाथ ज
 ननं (पुनः) नाम्ना सज्जनचित्तवल्लभं (स
 स्मात्) समासात् मन्त्रोजनाः शृण्वन्तु ॥

भाषार्थिका

मैं मन्त्रियेणाचार्य्य महावीर स्वामी तीन ज
 गतके गुरु मुक्तिस्त्रीके भर्तार कामदेव के पा
 षण १ तापन २ उच्चाटन ३ मोहन ४ वशी कर
 ण ५ रूप पांचवारा के नाश करणको शान्त
 वारा के धरणाहार जगतके दुखहारको नम
 स्कारकरके इस सज्जनचित्तवल्लभ नाम ।
 ग्रन्थको (जो भव्यजनोंको ज्ञानका देने वाला
 है) कहेंगा सज्जन सुनों ॥१॥

भाषाछन्द

रुप्यय

श्रीमन्वीर जिनेश विजग गुरु मुक्ति
 रमणि वर 'पुण्यवारा जयहेत धरा ।

जिन ब्रह्मवाण कर । जगदुख नाशानहा
 र बार बहु सीस निवाकर । सज्जन
 चित बल्लभ सुकाव्य यह भव्य बोध
 कर । मैं रचूं सुनों तुम सन्तजन मस्ति
 षेण मुनि कहत इस तसु अर्थ लिय ।
 भाषा विषे छन्द मिहर चन्द रचत तिम १

॥ मूलम् ॥

रात्रिश्चन्द्रमसा विना वृनिवहै ।
 नीभाति पद्माकरो यद्वत्पण्डि
 तलोकवर्जितसभा दन्तीवदन्तं
 विना पुष्पगन्धविवर्जितं मृत
 पतिः स्त्रीचेह तद्वन्मुनिश्चारित्रे
 णविना नभानि सततं यद्यप्य ।
 सो शास्त्रवान् ॥२॥

पदच्छेदः

रात्रिः चन्द्रमसा विना वृनिवहैः नीभाति
 पद्माकरः यद्वत् पण्डित लोकवर्जितसभा
 दन्ती इव दन्तं विना पुष्पगन्धविवर्जितं मृ
 तपतिः स्त्रीचेह तद्वत् मुनिः चारित्रेण
 विना न भानि सततं यद्यपि असौ शास्त्रवान्

संस्कृत टीका

[रात्रिः] निशा [चन्द्रमसा] चंद्रमा [विना] नियधे
 - रहिता [अन्ननिवर्हेः] कमलसमूहः [ना]
 न [भाति] प्रकाशते - शोभते [पद्माकरः]
 सरः [यद्दत्त] यथा [पण्डित लोक वर्जित सभा]
 विद्वज्जनैः रहितासदः [दन्ती] दन्ती [इव] तु
 ल्ये [दन्तं] गदनं [विना] नियधं [पुष्पं] कुसुमं ।
 [गन्धविवर्जितं] मौरभरहितं [मृतपतिः] दत्त
 भर्त्वी-विधवा [स्त्री] नारी [च] पुनः [तद्वत्] तथा
 [मुनिः] यतिः [इह] अस्मिन्लोकं [चारित्र्येण]
 आचारेण [विना] रहितः [नभाति] नशोभते ।
 [सततं] निरन्तरं [यद्यपि] यदि च [असौ] अयं
 [शास्त्रवान्] आगमविद ॥२॥

अन्वयः

यद्दत्त चन्द्रमसा विना रात्रिः [पुनः] अन्ननिवर्हे
 विना पद्माकरः [पुनः] पण्डित लोक वर्जित
 सभा [पुनः] दन्तं विना दन्ती [पुनः] गन्धविव
 र्जितं पुष्पं (पुनः) मृतपतिः स्त्रीः इह नोभाति
 तद्वत् चारित्र्येण विना सततं मुनिः नोभाति
 यद्यप्यसौ शास्त्रवान् भवति इति शेषः ॥२॥

भाषाटीका

जैसे चाँदके बिना रात और कमलसमूह के बिना सर और परिडित लोक बिना सभा और दाँतो के बिना हाथी और गंधके बिना पुष्प और पत्रिके बिना स्त्रीकी शोभा नहीं है तैसे यहाँ चारित्रके बिना सुनीकी शोभा नहीं है यद्यपि यह परिडित क्यों न हो ॥२॥

भाषाछन्द

मत्तगयन्द

चन्द्रबिनाजिमरैन नसोहत पद्मसमूह
बिना सर जैसे । परिडित लोकविहीनस
भानहिं सोहत दन्तबिना गजवैसे । गंध
बिनाजिमपुष्पनसोहत स्वामिबिनावि
धवातियतैसे । परिडित शास्त्रविपन्न
सुनीश्वर चारित हीन नसोहत ऐसै ॥२॥

मूलम्

किं वस्त्रन्यजनेन भो मुनिरसावर्त
वता जायते । क्ष्वेडेन च्युतपद्मगोप
तविषः किं जातवान् भूतले । मूलं
किंतपसः क्षमेन्द्रियजयः सत्यं सदा
चारता । रगादींश्च विभर्ति चेन्नसय

तिलिङ्गी भवेत् केवलम् ॥३॥

पदच्छेदः

किं वस्त्रन्यजनेन भाः मुनिः असा एतावता
जायते । क्ष्वेडेन च्युत पद्मगः गतविषः किं
जातवान् भूतले । मूलं किं तपसः क्षमा
इन्द्रियजयः सत्यं मदाचारता । गगादीन्
च विभ्रान् चेत न स यतिः लिङ्गी भवेत्
केवलम् ॥३॥

संस्कृतटीका

[किं] निषेधे [वस्त्रन्यजनेन] वसनन्यागेन [भाः]
उत्तमसम्बोधने [मुनिः] यतिः [असा] अयं [ए
तावता] एतावन्मात्रेण [जायते] भवति [क्ष्वेडेन]
कञ्चुलिकया [च्युतः] रहितः [पद्मगः] मयः
[गतविषः] रहितगरलः [किं] निषेधे [जातवान्]
भूतवान् [भूतले] पृथ्वीपृष्ठे [मूलं] कारणं [किं]
प्रश्ने [तपसः] तपनस्य [क्षमा] सहिष्णुता [इ
न्द्रियजयः] स्पर्शरसघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां
पञ्चेन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यो [दमः] निर्गमः
[सत्यं] अनृतशून्यत्वं [मदाचारता] मञ्जरगा
त्वं [गगादीन्] रागः प्रीतिः आदिशब्देन द्वे
यः क्रोधमानमाया लोभादयोपि ग्राह्याः च

पुनः [विभर्ति] पोषयति [चेत्] यदि [लिङ्गी] वे
शधारी [भवेत्] जायेत् [केवलम्] एकम् ॥३॥

अन्वयः

भोः [यते इति शेषः] एतावता वस्त्रन्यजनेन ।
असौ किम्मुनिर्जायते । श्वेडेन च्युतपद्मगः मृ
तस्ति किं गतविषो जातवान् । तपसो मूलं किम्
। क्षमन्द्रियजयः । सत्यं । सदाचारता । चेत्
रागादीन् विभर्ति सः यतिर्न । केवलं लिङ्गी
भवेत् ॥ ३ ॥

भाषाटीका

भो यति क्या यह इस वस्त्रके ही त्यागने से मु
नि होजाता है कंचलीके छोड़ने से क्या पृथ्वी
पर साँप निर्विष हीजाता है तप का मूल क्या
है क्षमा इन्द्रियों का जीतना सत्य बोलना श्रेष्ठ
आचरण पालना और जो रागादिक की बढ़ा
या तो वह यति नहीं है केवल लिङ्गी अर्थात्
देश धारी ही है ॥ ३ ॥

भाषाछन्द

भोयति केवल वस्त्र उतारन सों यह ।
क्या मुनिही बनजावे । कांचलि छा
ड़न सों धरणी पर सूर्य कहा विषवर्जि

तथावे । मृलकहातपडद्वियर्जातनमन्य
क्षमाशुभचारितगावे । सागरुद्वेषजुषुष्टक
रेनवनाहियतोपरलिंगवनावे ॥ ३ ॥

मूलम

देहेनिर्ममतागुरोविनयतानित्यं
श्रुताभ्यासता । चारित्रो ज्वलता
महोपशमतासंसारनिर्वगता ।
अन्तरवाह्यपरिग्रहत्यजनताध-
र्मज्ञतासाधुता । साधासाधुजन-
स्यलक्षणमिदंसंसारविक्षेपणम ४

पदच्छेदः

देहे निर्ममता गुरो विनयता नित्यं श्रुता-
भ्यासता चारित्रो ज्वलता महोपशमता सं-
सारनिर्वगता अन्तरवाह्यपरिग्रहत्यजनता
धर्मज्ञता साधुता साधासाधुजनस्य लक्ष-
णम् इदम् संसार विक्षेपणम् ॥ ४ ॥

संस्कृतटीका

(देहे) शरीरे (निर्ममता) ममत्वपरित्यागः (गुरो)
हितापदेशकः (विनयता) नम्रता (नित्यं)

सक्षा [ऋताभ्यासता] शास्त्रस्यभूयोचिन्तनं
 [चारित्र्योज्वलता] आचारस्यनिर्मलता [महो
 पशमता] क्रोधमानमायालोभादीनाकषाया-
 नांसम्यक्प्रकारेणोपशमनम् [संसारनिर्वाण-
 ता] पञ्चपरावर्तनरूपसंसारे चतुर्षुगतिषू-
 ष्ववजन्ममरण जरादि दुःखेभ्योभीतिः [अ-
 न्तरवाह्यपरिग्रहत्यजनता] अन्तरवर्तिनो-
 चतुर्दशधामिथ्यात्ववेदरागद्वेष हास्यरस्य
 रति शोक भय जुगुप्सा क्रोध मान माया
 लोभानां वह्निः स्यात् दशधा क्षेत्र वास्तु हिर-
 ण्य सुवर्ण धनधान्य दासी दास कुप्य भा-
 ण्डानाञ्चैवचतुर्विंशतिधापरिग्रहाणांत्या-
 गः [धर्मज्ञता] धर्मस्यवस्तुस्वभावस्य
 उत्तमक्षमामर्दवार्जव सत्य शौच संयम तप
 स्त्यागा किञ्चन ब्रह्मचर्याणां दशधा धर्म-
 स्यवाज्ञात्त्वं [साधुता] मुनेर्धम्मत्वं [सा-
 धो] हेयते [साधुजनस्य] मुनिलोकस्य [ल-
 क्षणं] चिन्हं [इदम्] पूर्वोक्तं [संसारविक्षेप-
 णं] जगतोनाशकम् ॥ ४ ॥ अन्वयः
 मोसाधोसाधुजनस्येदं वक्ष्यमाणं लक्षणं संसा-
 रविक्षेपणमस्ति इतिशेषः [इदं किम्]

निर्ममता [कस्मिन्] दंडे विनयता [कस्मि
 न्] गुण श्रुताभ्यामता [कदा] नित्य चाग्नि
 ज्वलता [महोपशसता] संसारनिर्वगता [अ
 न्तरवाह्य परिग्रहल्यजनता] धर्मजता [साधु
 ता] ४ **भाषाटीका**

भोसाधु साधुजनके ये लक्षण संसारके नाश
 करण द्वारे हैं ते कौन हैं सो कहिये हैं प्रगिर
 में अपनायतन मानना गुरुजनों की विनयक
 रना सदा शास्त्र का अभ्यास करना चाग्रिको
 मल्ल न लगावना क्रोधमान माया लोभादिक
 धार्यों को उपशान्त करना संसार में डरना मि
 थ्यात्व १ वेद २ राग ३ द्वेष ४ हास्य ५ म
 ति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा १०
 क्रोध ११ मान १२ माया १३ लोभ १४ अ
 न्तरङ्ग के और क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य
 ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दारु ७ दा
 स ८ कुप्य ९ भाण्ड १० वाहर के रंगे
 चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करना
 धर्म नाम वस्तु के स्वभाव का है तथा उत्तम
 क्षमा १ साद्वि २ आर्जव ३ सत्य ४ शा
 न्त ५ संयम ६ तप ७ त्याग ८ आकम्बन

६ ब्रह्मचर्य्य १० रूप दश प्रकार है तिस-
का जानना और साधुपना ४

भाषाछन्द

देह विषे ममता परित्याग गुरुजन में नतिशा-
स्त्र अभ्यासा । चाहित उज्वलता अधिकीश
मता भव भ्रान्ति यकी नितत्रासा । अन्तर-
बाहर त्याग परिग्रह साधुपना अरु धर्मवि-
लासा । भोमुनिलक्षण साधुन का यह सं-
सृति नाशान को यम फासा ॥ ४ ॥

मूलम

किन्दीक्षाग्रहणेन ते यदि धनाकां
क्षा भवेत्चेतसि । किङ्गाहस्थम-
नेन वेशधरणेना सुन्दरम्मन्यसे ।
द्रव्योपार्जनचित्तमेव कथयत्य-
म्यन्तरस्थाङ्गना । नोचेदर्थपरि-
ग्रहग्रहमतिभिक्षानसम्पद्यते ५

पदच्छेदः

किम् दीक्षाग्रहणेन ते यदि धनाकां-
क्षा भवेत्चेतसि किम् गार्हस्थ्यम-
नेन वेशधरणे

न अस्मन्दरम् मन्यसे द्रव्यापार्जनचित्तम् यव क-
 थयति अभ्यन्तरस्याङ्गनाम् नोचेत् अर्थपरिग्रह-
 ग्रहमतिः भिक्षो न सम्पद्यते ॥ ५ ॥

संस्कृतटीका

[किन्] निषेधे- किमापिन [दीक्षाग्रहणेन] मयम
 धारणेन- पुत्रकलित्रग्रहादीनांत्यागेन [ने] नवः य
 दि] चेत् [धनाकांक्षा] द्रव्यस्य वाञ्छा [भवेत्] स्यात्
 [चेतसि] मनसि [किम्] प्रणे] वितर्कवा [गाहस्यं]
 ग्रहवासं [अनेन] पूर्वोक्तेन मनसि धनाकांक्षत्वाव
 हिर्वस्त्वादीनान्त्यागेन [वेशाधारणेन] नग्नस्य
 भवेनेन [अस्मन्दरम्] अश्रेष्ठम् [मन्यसे] जानामि
 [द्रव्यापार्जनचित्तम्] धनादीनामाहर्तृमनः [सर्वानि]
 श्रयेन [कथयति] वदति [अभ्यन्तरस्याङ्गनाम्] अ-
 न्तरवर्तनीस्त्रियं [नोचेत्] अन्यथा [अर्थपरिग्रहग्रह-
 मतिः] अर्थधनं तदेव परिग्रहः अर्थपरिग्रहः तस्य
 होग्रहणंतस्य मतिः बुद्धिः भिक्षोऽमुनेन सम्पद्यते न
 जायते ५०

अन्वयः

भो भिक्षो यदि ते चेतसि धनाकांक्षा भवेत् तर्हि
 इति शेषः दीक्षाग्रहणेन किं अनेन वेश

धरणेन किम् गार्हस्थ्यमसुन्दरं मन्यसे द्रव्यो
पार्जनचित्तमेवाभ्यन्तरस्थाङ्गनां कथयति नो
चेदर्थपरिग्रहग्रहमतिर्नसम्पद्यते ॥५॥

भाषाटीका

भो भिक्षुक जो तैरे चित्तमें धन की चाह वर्तै है
तौ दीक्षा लेने से क्या अर्थात् कुछ भी नहीं इस
मुनि के वेश बनाने से क्या गृहस्थ पने को बुरा
जानै है द्रव्यके उपार्जन का चित्त ही मनो वर्त
नी नारी को बतलाता है नहीं तौ धन रूप परिग्र
हके ग्रहण करने की मति उत्पन्न नहीं होती ५

भाषाकृन्द

जो धन की रुचि है उर अन्तरसंयम धारण
सार न जानै । ऐस अपावन वेश बनावन सै
धर बार बुरा किम मानै । द्रव्य उपार्जन चित्त
निरन्तर अन्तर कामनि चाह बरवानै । नातर
हे मुनि अर्थ परिग्रह लेन कि बुद्धि कदापि न
ठानै ॥५॥

सूत्रम् ॥

योषा पाण्डुक गोविवर्जितपदे

संतिष्ठ भिक्षोः सदा । भुक्त्वात्तार
 मकारित परगृह लब्धयथा सम्भ
 वम् । षडधावश्यकमत्क्रिया-
 सुनिरतो धर्म्मनुरागवहन । मा
 ह्द्वेयागीभिरात्मभावनपरारत्नत्र-
 यालङ्घनः ६

पदच्छेदः

योषा पाण्डुक गो विवर्जितपदे संतिष्ठ भिक्षोः सदा
 भुक्त्वा आहारम् अकारितम् परगृह लब्धम् यथा
 सम्भवं षडधा आवश्यकमत्क्रियासु निरतः ध-
 र्म्मानुरागम् वहन् माह्द्वेयागीभिः आत्मभावनपर-
 रत्नत्रयालङ्घनः ॥६॥

अन्वयः

[योषा] नारी । [पाण्डुकं] नपुंसकम् । [गोः] पशुतैः । व-
 र्जितः । रक्षितः । [पदे] स्थाने । [संतिष्ठ] उपविशाम्बिर्भा-
 व । [भिक्षो] याचक । [सदा] निरन्तरम् । [भुक्त्वा] खादित्वा ।
 [आहारम्] अशनम् । [आकारितम्] स्वप्नप्रणायिना
 अन्येन स्वेच्छया कृतदत्तम् । [परगृह] अन्यस्यागारे
 [लब्धम्] प्राप्तम् । [यथा सम्भवं] येन प्रकारेण
 सम्भवनीयम् । [षडधा] षट् प्रकारा । [आवश्यक]

सक्रियासु। सामायिकञ्चतुर्विंशति तीर्थकरस्त-
वनवन्दना प्रतिक्रमण प्रत्यारव्यान कायोत्सर्गाः
षट्प्रकाराः आवश्यक क्रियाः तस्यैव सक्रियाः
श्रेष्ठाचरणानितासु [निरतः] लग्नः [धर्मानुरा-
गं] उत्तमक्षमादि षुपूर्वोक्तेषु दशधा धर्मेषु रा-
गं रुचिं [वहन्] धारयन् [सार्द्धं योगिभिः] सु-
निभिः सह [आत्मभावनपरः] चेतनस्वभावलो-
नः [रत्नत्रयालंकृतः] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य
स्वरूपै स्त्रिभिरत्नै र्भूषितः ॥ ६ ॥

अन्वयः

भो भिक्षो त्वं सदा योषा पाण्डुक गो विवर्जित प-
दे सन्तिष्ठ किञ्चत्वा परगृहे यथा सम्भव सका-
रितमाहारं लब्धं भुक्त्वा कथम्भूतः सन् षडाव-
श्यक सक्रियासु निरतः पुनः धर्मानुरागं वहन्
पुनः योगिभिः सार्द्धं आत्मभावनपरः पुनः रत्नत्रया-
लङ्कृतः ॥ ६ ॥

भाषाटीका

हे मुनि पराशर धर विना वनवास भोजनको जो देव
योगसै जैसा तैसा लुफको मिला जावै खाकर सामायि-
क १ चौबीस तीर्थकर स्तवन २ वंदना ३ प्रति-
क्रमण ४ प्रत्यारव्यान ५ का

योत्सर्गं दं छद्म आवश्यक रूप मन्त्रियाणां मे
 लीन इवा वश लक्षणा धर्ममे रगाधारना आ
 त्मभाव मे लगाइवा रत्नत्रयकर भूषित मुनि
 जनों की साथ नारी नपुंसक पशु रहित स्थानमे
 तिष्ठ ॥ ६ ॥

भाषाछन्द

नारि नपुंसक पगाड विवर्जित थान विपे
 नित तिष्ठ भिरवारी । नेकर भुक्त अकारि
 तजो पर गह मिला विधिके अनुसारी ।
 पाल अवश्यक षट् सुक्रियास्त धम्मधुर
 न्धर हो अनगारी । साधुन साथ समागम
 आनम लान त्रिरत्न विभूषणा धारी ॥ ६ ॥

मूलम

दुर्गन्धं वदनं वपुर्मल भृतम्भिजा
 टनाडोजनं । शय्या स्थगिडल भू
 मिषु प्रतिदिनं कटघानते कपटे । मु
 राडं सुरिडत मद्द दग्ध शव वत्त्वं दृ
 श्यते भोजनेः । साधोद्याव्य वलाज
 नस्य भवतो गोष्ठी कथं रोचते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः

दुर्गन्धं वदनं वपुः मलभृतं भिच्चाटनात् ।

भोजनम् शय्यास्थण्डिलभूमिषु प्रतिदिनम्
 कट्यां न तै कर्पटं सुराडं सुरिडतं अर्द्धदग्ध
 गयवत् त्वम् दृश्यते भोः जनैः साधो अद्या
 पि अबलाजनस्य भवतः गोष्ठी कथम्
 शीवते ॥७॥

संस्कृत टीका

[दुर्गन्धं] असीरभम् [बिदनम्] सुखम् [विपुः]
 शरीरम् [मलभृतम्] रजसालिप्तम् [भिक्षा
 ठनात्] अर्द्धनायै गमनात् [भोजनम्] अशा
 नम् [शय्या] शयनम् [स्थण्डिलभूमिषु]
 कठिन वरणीषु [प्रतिदिनम्] नित्यं [कट्यां
 नितम्बे] [ने] तव [कर्पटम्] कौपीनम् [सुराडं]
 शिरः [सुरिडतम्] केशरहितम् [अर्द्धदग्ध]
 यावत् [अर्द्धं] सुष्टु मृतकेन तुल्यम् [त्वम्]
 मध्यम पुरुस्यैक वचन वाचिनः सर्व नाम्ना
 नाच्यः [दृश्यते] प्रतीक्ष्यते [जनैः] लोकैः [।
 [साधो] सुने [अद्यापि] अद्यपर्यन्तमपि ।
 [अबलाजनस्य] नारीलोकस्य [भवतः] तव
 [गोष्ठी] वचनालापः [कथम्] केन प्रकारि
 शा [शीवते] कास्यते ॥७॥

अल्बयः

भो साथी भवतः अद्यापि अवलाजनस्य गो
 ष्ठी कथं रोचते तेवदनम् दुर्गन्धम् वपुःमल
 भृतम् भोजनम्भिजाटनात् स्थण्डिलभूमि
 शु प्रतिदिनं शय्या कस्या कपटं न मुण्डम्
 मुण्डितम् पुनः जनैः त्वमद्दं दग्धं प्रावचत
 दृश्यते ॥ ७ ॥

भाषा टीका

भो साथी तूरे मुखसे तो दुर्गन्ध आता है और
 शरीर रजसे मलिन हो रहा है और भोजन
 गंकर भोजन करता है और कठोर कंकरीली
 भूमि पर नित्य सोता है कटिमें कोपीन तक
 भी नहीं है लोगों की दृष्टिमें आधे जल हुं
 मृतक समान दृष्ट पड़ता है अब लोभो म्नी
 जनो की साथ वचनालाप करने का तूरा मन
 कैसे लुधाता है ॥ ७ ॥

भाषा छन्द

आवत गन्ध बुरी मुखमें अरु धूसर
 अङ्ग भिजाकर खाना। भूमिकठोर विये
 नित सोवनना कटिमें कोपीन प्रमाना। मु
 ण्डित मुण्ड पर दृगलोकन अर्द्धजल मृत
 अङ्ग समाना। नारिनक संग भोमान अद्यापि

चाहत क्यौं कर बात बनाना ॥ ७ ॥

मूलम्

अङ्गं शोणितशुक्रसम्भवमिदम्
 दोस्थिमज्जाकुलम् । वाह्यमाक्षि
 कपत्रसन्निभमहोचर्मोवृतं सर्वतः
 । नीचेत्काकषकादिभिर्वपुरहो ।
 जायेत भक्ष्यं ध्रुवं । दृष्ट्याद्यापि श
 रीरसद्दानिकथं निर्वगतान्स्थिते ।

॥ ८ ॥

पदच्छेदः

अङ्गं शोणितशुक्रसम्भवम् इदम् मेदोस्थि
 मज्जाकुलम् वाह्यमाक्षिकपत्रसन्निभम्
 अहोचर्मोवृतम् सर्वतः नीचेत् काक
 षकादिभिः वपुः अहो जायेत भक्ष्यम्
 ध्रुवं दृष्ट्याऽद्यापि शरीरसद्दानिकथम्
 निर्वगतान् स्थिते ॥ ८ ॥

संस्कृतटीका

[अङ्गम्] शरीरम् [शोणितशुक्रसम्भवम्]
 रक्तवीर्याभ्यां जातम् [इदम्] सन्सुखीभूत
 म् [मेदोस्थिमज्जाकुलम्] वसाकाकसा
 स्थिसारैर्भूतम् [वाह्यं] वह्निः [माक्षिकपत्र

मन्त्रिभम्] मन्त्रिकायाः पञ्चसनुन्यम् [अहो]
 आश्वर्य्ये [चर्मोदतम्] चर्मणां वैष्टितम् ।
 [सर्वतः] समन्ततः [निर्वृत] नान्यथा [काक
 वकादिभिः] वायम वनाकारादिभिः सामभति
 भिर्जन्तुभिः [वपुः] शरीरम् [अहो] शोके [जाये
 त] भवेत् [भक्ष्यम्] भोक्तुं योग्यम् [ध्रुवं] निश्चि
 तम् [दृष्ट्वा] वीक्ष्य [अद्यापि] इदानीमपि [शरीर
 सद्यनि] देहागारे [कथम्] किमर्थम् [निर्वेगता
] संसारं भ्रमसात् भीतिः [ते] त्वाम [जास्ति] न
 विद्यते ॥ ८ ॥

अन्वयः

अहो इदमङ्गम् दृष्ट्वा अद्यापि शरीरसद्यनि
 ते निर्वेगतानास्ति कथम्भूतमङ्गम् शोकात्
 शुक मम्भवम् पुनः मेदोस्थिमज्जाकुलम् पु
 नः शोके सर्वतः मादिकपत्रमन्त्रिभम् पुनः च
 र्मोदतम् नैवेत् काकवकादिभिः इदं वपुः
 भक्ष्यं जायेत ॥ ८ ॥

भाषाटीका

यह शरीर लोह और वायुसे उत्पन्न भयादे
 हाइ मांस मज्जादि अपावन वस्तुसे भरई बा
 हिरसे भारवाकं पंख समान चामके लपेटन से

सब श्रीङ्गसे लिपटा हुआ है नहीं तो काग बगला
दिक जन्तुओं का खाजा ही जावे यह देखकर भी
जो तुजके शरीर रूप घरमें विरक्तता नहीं है तो
बड़ा आश्चर्य वा शोक है ॥ ८ ॥

भाषाछन्द

श्लेषित बीरजसौं उपजी यह देह अपावन
बस्तु भरी है । बाहिर माक्षिक पंख सभा
न जुचा मलयेटन सौं सुथरी है । नातर वा
यस और बकादिक भुञ्जत संशय को न
करी है । यौ लख अद्यपि तैं वह विस्मय
देह विषै समता न हरी है ॥ ८ ॥

मूलम्

दुर्गन्धं नवभिर्वपुः प्रवहति द्वारै र्नि-
हं सन्ततं । तद्दृष्ट्वा पिचयस्य चेतसि
पुनर्निर्वेगतानास्ति चेत । तस्यान्य
द्विवस्तुकीदृशमहीतत्कारणं क
थ्यतां । श्रीस्वराडादिभि रङ्ग संस्कृ
तिरियं व्याख्याति दुर्गन्धिताम् । ४ ।

पदच्छेदः

दुर्गन्धं नवभिः वपुः प्रवहति द्वारैः इहं सन्त-
तम् तत् दृष्ट्वा अपि च यस्य चेतसि पुनः निर्वे-

गतौ न अस्ति चेत् तस्य अन्यत भुवि वस्तु
 कीदृशम् अहो तन्कारणम् कथ्यताम् श्री
 स्वराडादिभिः अङ्ग संस्कृतिः इयम् व्याख्या
 ति दुर्गन्धताम् ॥ ८ ॥

संस्कृतटीका

[दुर्गन्धम्] असौरभम् [नवभिः] शकौ न दशाभिः
 संख्या प्रमाणः [वपुः] शरीरम् [भवति] प्रवति
 [हारेः] छिद्रैः [इदं] सन्मुखी भूतं सन्नतं [निरंत
 रं] [तत्] पूर्वोक्तं [दृष्ट्वा] दीप्य [च] पुनः [चेत्] सि
 मनसि [पुनः] चार्थं [निर्वेगात्] वैराग्यम् [नान्ति
 नविद्यते] चेत् [यदि] [तस्य] एवं दृष्ट्वापि [निर्वेगात्]
 मकारिणः पुरुषस्य [अन्यत] इतरत [भुवि]
 पृथिव्याम् [वस्तु] पदार्थः [कीदृशम्] किन्नाम
 धेयम् केन तुल्यं वा [अहो] आश्चर्यं [तन्कारणं]
 [तस्य हेतुं] कथ्यतां [प्रोच्यतां] [श्री स्वराडादिभिः]
 कर्मादिभिः [अङ्ग संस्कृतिः] शरीर
 स्य अङ्गारः [इयं] पूर्वोक्त संस्क्रुतेः पूर्वोक्ता
 अङ्ग संस्कृतिः व्याख्याते प्रकथ्य करोति [दुर्ग
 न्धताम्] असौरभम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

इदं वपुः दुर्गन्धं नवहारैः सततं प्रवहति नह

प्रापि यस्य चेतसि चेत निर्वेगतानास्ति अहोत
स्य भुवि अन्यत कीदृशं वस्तु तत्कारणम् भ
वति इति शेषः कथ्यताम् उच्यतां श्रीखण्डा
दिभि रियं संस्कृतिः दुर्गन्धतांख्याति ॥ ६ ॥

भाषाटीका

यह शरीर दुर्गन्धवान है नव द्वारोंसे निरन्तर
फिरे है तिसकी देवके भी जिसके चित्तमें यदि
विरागता नहीं है तौ कहिये पृथ्वी पर और कौ
नसी वस्तु तिसके वैराग्यकी कारण है यह
चन्दनादिक का संस्कार दुर्गन्धताको प्रघट
करता है ॥ ६ ॥

भाषाछन्द

देहवृत्त दुर्गन्ध भारी यह नौमल द्वार वहै
नित यासै । ताहि बिलोक न होत विराग ।
अहो चित्तमें इस पूछत तासूं । कौन अपाव
न वस्तु धरा पर हो विरती चित्तमें लख जासूं
कैसर आदि सुगन्धित वस्तु लहै दुर्गन्ध ।
स्पर्शत तासूं ॥ ६ ॥

मूलम

स्त्रीणां भाव बिलास विश्रमगतिं ह
प्राणुरागं मना । म्मागास्त्वं विषवृक्ष

पक्वफलवत्सुखादवन्त्यमना । इ
 पत्सवनमात्रतापिमरणं पुमां प्रयच्छ
 न्तिभोः । तस्माद्दृष्टे विषादिवन्त्यादिः
 रत्वं दूरतो मृत्यवे ॥१०॥

पदच्छेदः

स्त्रीणां भावविलासविभ्रमगतिं दृष्ट्वा अनुगमं
 मनाक् मागाः त्वं विषं वृक्षं पक्व फलवत् सुखा
 दवन्त्यः तदा इपत्सेवनमात्रतः अपि मरणं पु-
 सा प्रयच्छन्तिभोः तस्मान् दृष्टे विषादिवत् परि-
 हर त्वं दूरतः मृत्यवे ॥१०॥

संस्कृत टीका

[स्त्रीणां] नारीणां [भाव विलास विभ्रमगतिं] ।
 अङ्गोपाङ्ग कृत चेष्टां [दृष्ट्वा] वीक्ष्य । अनुग-
 मं] मोहं । [मागाः] मागच्छ [विष वृक्ष प-
 क्व फलवत्] हलाहलम्यनरोः परिणतन-
 फले न तुल्य [सुखादवन्त्यः] मनाजरसेन
 युक्ताः [तदा] तस्मिन्काले [इपत्सेव-
 नमात्रतः] किञ्चिद् भोगनादेव [मरणं]
 नाशं [पुंसां] नराणां [प्रयच्छन्ति]
 ददति [भोः] सम्बोधनं [तस्मान्]

ततोहेतोः [दृष्टिविषाहिवत्] दृष्टौविषंयस्य
 स दृष्टिविषः सस्रवाहिः दृष्टिविषाहिः सस्य
 विशेषः तेनतुल्यं [परिहर] परित्यज [दूरतः]
 दूरात् [मृत्यवे] जीवनाय ॥१०॥

अन्वयः

भोयते स्त्रीणांभाव विभ्रमं विलास गतिं दृष्ट्वा
 त्वं मनागपि अनुरागं प्राणाः कथम्भूताः स्त्रियः
 विष वृक्ष पक्व फलवत् सुखादवन्त्यः पुनः ई
 पत्सेवनामात्रतोपि पुंसो मरणं प्रयच्छन्ति त-
 स्मात् दृष्टि विषाहिवत् त्वं मृत्यवे दूरतो प-
 रिहर ॥१०॥

भाषा टीका

भोयति स्त्रियों की भाव विलास विभ्रम ग-
 तिको देख तू टुक भी अनुराग मत कर ये
 स्त्री जन विष वृक्ष के पक्के फलवत् श्रेष्ठ
 स्वादु वाली हैं और तनक से सेवन मात्र से पु-
 रुषों को मृत्यु देती हैं भावार्थ जैसे विष के
 वृक्ष का पक्का फल खाने में तो मीठा होता
 है परन्तु थोड़ा सा खास भी प्राण जाते हैं तैसे ही
 स्त्री जन भी भोग काल में अच्छी लगती हैं परन्तु अ-
 न्त में नरकादि दुर्गति को पहुंचाती हैं तो इसलिये दृष्टिविष

जाति के सर्प समान तू इनको दूर से ही न्यागटे ॥

भाषाछन्द

देख वियाजनकी गति विभ्रम और विन्नास न
हो अनुरागी । हे विषयदत्तने फल पक नमा
न सुखादनमें रस पागी । किञ्चित् सेवनसन-
र याकर मृत्यु नहै दुःख पाय अभागी । तामुनिद्व
रहितें तजकामन दृष्टि विप्राहि समान विरागी ॥

मूलम्

यद्यद्वाञ्छति तत्तदेव वपुषे दत्तम्
पुष्टं त्वया । साद्धं नैति तर्थापितं
जडमते मित्रादयो यान्ति किम । पु
ण्यं पाप मिति द्वयञ्च भवतः प्रष्ट-
नुयातीहते । तस्मान्मास्मक्याम
नागपि भवान्मोहं शरीरादिषु ॥११॥

पदच्छेदः

यद् यद् वा ञ्छति तद् तद् एव वपुषे दत्त
म् पुष्टं त्वया साद्धं नैति तर्थापि त
जडमते मित्रादयः यान्ति किम पुण्यं पाप

इति द्वयं च भवतः पृष्ठे अनुयाति इह ते त
 स्मात् मास्म कथाः मनाक् आपि भवान् मोहं
 शरीरादिषु ॥११॥

संस्कृत टीका

[यद्यद्] यानि यानि भोज्य वस्त्रादीनि वस्तूनि
 [वाञ्छति] आकांक्षति [वपुषे] शरीराय [दत्तं]
 त्यक्तं [सुपुष्टं] बलदायि [त्वया] भवता [सा
 र्द्धं] सह [नैति] नगच्छति [तथापि] तदापि [ते] तव
 [जडमते] मन्दबुद्धे [मित्रादयः] मित्रं सखा आदिशब्देन
 कलत्र वांधव प्रभृतयः [यान्ति] गच्छन्ति [किम्] निषे
 धेन गच्छन्ति इति भावः [पुण्यं] पूजादानादिशुभकृत्यं
 [पापं] हिंसासूषादिपञ्च पापरूपमशुभकृत्यं [द्वयं]
 द्वन्द्वः [भवतः] तव [पृष्ठे] पश्चान् [अनुयाति] अनुगच्छति
 [इह] अस्मिन् लोके [ते] तव [तस्मात्] ततो हेतोः [मास्म
 कथाः] माकुरु [मनागपि] अल्पमपि [भवान्] त्वं [मोहं]
 स्नेहं रागं वा [शरीरादिषु] शरीरं वपुः आदिशब्देन मित्रक
 लत्र धनधान्यादयः ११ अन्वयः

हे जडमते इदं शरीरं यद्यद् वस्तु भवतः वा
 ञ्छति त्वया तत्तदेव वपुषे सुपुष्टं वस्तु दत्तं
 तथापि तद् शरीरं ते सार्द्धं नैति ददा मित्रा-

दयः किंवालि उदने प्राण्य पापन्द द्वय भयतः
एष अनुद्यानि तन्नातु शरीरगदिषु भवान् मनाग
पि मोह मास्त दयाः ११

भाषा टीका

हं जडमति जो जो वस्तु मांगी सो सो पुष्ट वस्तु तने
शरीर को दई तो भी यह शरीर तरा नाय नदी जाग
ता मित्रादिक कर्म जागे नरे पुण्य पाप दो दोनां य
हां तरं पीछ चलेंगे इसलिये दुकभी शरीरगदिक
में मोह मतकर ॥ ११ ॥

भाषा छन्द

जो कुछ मांगत वस्तुसु पोषक नृ तनको नित देत
अज्ञानी । तो पुण्यह तव संगन जावहि मित्रन
की फिर कौन कहानी । पुण्यरु पाप चलें तव
पीछहु नू इन दोवन का आगानी । याल्खबछो
ड शरीर प्रभृतिन में यह मोह मना दुख स्वाना ११

मूलम्

शोचन्ते न मृतं कदापि वनिताय
द्यस्ति गेह धनं न च्छन्नास्ति रुढ
न्ति जीवनधिया स्मृत्या पुनः प्र-
त्यहं क्षान्वातदहनक्रिया निज

निजव्यापारचिन्ताकुलाः तन्नामा
पिचविस्मरन्तिकतिभिःसस्वत्सरैः
योषिताः १२
पदच्छेदः

शोचन्ते न मृत कदापि वनिताः यदि अस्ति

गेहे धनं तद्देवेत् न अस्ति रुदन्ति जीव

नधिया स्मृत्वा पुनः प्रत्यहं कृत्वा तद्देह न

क्रिया निज निज व्यापार चिन्ताकुलाः तन्ना

म अपि च विस्मरन्ति कतिभिः सस्वत्सरैः

योषिताः १२

संस्कृत टीका

[न शोचन्ते] न शोकं कुर्वन्ति [मृतं] त्यक्तप्राणं
[कदापि] कस्मिन्कालेपि [वनिताः] स्त्रियः [य
दि] चेत् [अस्ति] वर्तते [गेहे] आगारे [धनं] वित्तं [त
द्] पूर्वोक्तधनं [नास्ति] न भवति [रुदन्ति] शोकाक्लिष्टाः
सन्त्यः अश्रुपातं विमोचयन्ति जीव न धिया प्राणानां रक्षा
णवुद्ध्या स्वमाभूत् यदस्माकं प्राणाः न शेषयुः स्मृत्वा
विचिन्त्य पुनः अशीक्षां प्रत्यहं प्रतिदिनं नित्यं कृत्वा वि
धाय तद्देहक्रियां तस्य मृतकशरीरस्थानौ संस्कारविधानं

निज निज व्यापार चिन्ता कुत्राः न्यत्तकान्येषु
 दत्तचित्ताः तन्नामापित्तस्य न्यत्तकान्य नामधेयस्य
 पितृस्मरन्ति नदृष्टिं यथास्ति कर्त्ताभिः क्रियद्
 भिः संवत्सरैः वर्षैः योषिताः नार्यैः १२

अन्वयः

यदि मेहे धनमस्ति नोहे दानताः सन्तं कदापि न
 शाचन्ते चेदद्वन् नास्ति पुनः प्रत्यहं जीवन्धि-
 या तं मृतं स्मृत्वा रुदन्ति तद्वदन क्रियां शान्ता सं-
 बन्धिभोजनाः निज निज व्यापार चिन्ता कुत्राभ
 वन्ति योषिताश्च कर्त्ताभिः वत्सरैः ननामापि स्मि

स्मरन्ति १२

भाषा टीका

जो घर में धन है तो स्त्री भी मेरे पति का शोक
 नहीं करती हैं और जो धन नहीं है तो अपने जी-
 वने की इच्छा धारण कर प्रतिदिन मेरे पति को
 स्मरण करके रोती हैं उसकी दग्ध क्रिया होने
 पर लग्यधी जन अपने अपने कार्यों में चिन्ता
 तुर होजाते हैं कुछ वर्ष व्यतीत होने पर अव-
 श्याजन उसका नाम भी भूल जाती हैं १२

भाषाण्ड

जो घर में धन हो न कदापि करै तिय सोच मं-
 रे बलमा की । जो नहि हो धन तौ नित रोवत
 धार हिये अभिलाष जिवा की । दग्ध किये प
 र सर्व कुटुंबिन स्वार्थ लगीं ममत्ता तज ताकी ।
 केतिक वर्ष गर अवलाजन भूलहि नाम नले

सुधिवाकी १२

मूलम्

अष्टाविंशति भेद आत्मनि पुरासरो
 प्यसाधो व्रतं साक्षीकृत्य जिनान्
 गुरुन् अपि कियत्कालत्वया पालितं
 भक्तुं वाञ्छसि शीतवातविहितो भूत्वा
 धुना तद् व्रतं दारिद्र्योपहतः स्ववान्त
 मशानं भुङ्क्तेः सुघातोऽपि किम् १३ ।

पदच्छेदः

अष्टाविंशतिभेदं आत्मनि पुरासरोप्यसाधो
 व्रतं साक्षीकृत्य जिनान् गुरुन् अपि किय-
 त्कालत्वया पालितं भक्तुं वाञ्छसि शी-
 तवातविहितः भूत्वा अधुना तद् व्रतं दारि-

द्रोपदतः स्ववान्तं अशनं भुङ्क्ते सुधानः
 अपि किम् ॥ १३ ॥

संस्कृतटीका

[अष्टाविंशतिभेदं] अष्टभिरधिकं विंशतिभेदः प्र-
 काराः यस्य तद् प्रकारा नाह आहिंसा १ सत्यं २
 अधैर्यं ३ ब्रह्मचर्यं ४ अपौरुषहः ५ एवं-
 पञ्च महाव्रतानि । ईर्य्या १ भाषा २ सपणा ३
 आदाननिकोषणं ४ प्रतिष्ठापनं ५ एवं पञ्च समि-
 तयः स्पर्शनं १ रसनं २ घ्राणं ३ चक्षुः ४ श्रोत्रं ५
 पञ्चेन्द्रियाणि तेषां स्वस्व विषयभ्यां क्लृप्ताकारेण
 व्यावर्तनमिति पञ्चेन्द्रिय विजयः षडावप्रय का-
 स्त पूर्वमेव षष्टम काव्यस्य टीकायां कथिताः
 भ्रूमीशयनं १ स्नानत्यजनं २ दन्तधावनत्यागः ३
 बस्त्रत्यजनं ४ केशलोचनं ५ उदण्डमहारः ६ अ-
 त्यभोजनं तदपि दिने एकवारं मेव ७ (आत्म-
 नि) स्वस्मिन् (पुरा) पूर्वस्मिन् काले (संरोप्य
 धृत्वा साधो) मुनि (व्रत) पूर्वाक्त मष्टाविंश-
 तिभेदं नियमं (साक्षीकृत्य साक्षान् दर्शयन्
 कृत्वा (जिनान्) केवलिनः (गुरुन् ज-
 नयतीन् (अपि) निर्धारणं (कियन्कालं

कानिचिद्दिनानि (त्वया) भवता (पालितं)
 पोषितं (भक्तं) त्रोटयितुं (बाञ्छसि) का
 मयसि (शीत वात विहतः) शीत वायुभ्यां
 पीडितः (भूत्वा) सित्वा (अधुना) इदानीं।
 (तद् ब्रतं) पूर्व कथितं ब्रतं (दारिद्र्योपहतः
 । धनराहित्येनापदग्रस्तः (स्वदान्तं आत्म
 नो वसनं (अपानं) भोजनं (भुङ्के) खादति
 क्षुधार्तः वृमुक्षया पीडितः किम् निषेधे
 न भुङ्के इति भावः ॥ १३ ॥

अन्वयः

हे साधो पुरा त्वया जिनान् गुरुन् अपिसा
 क्षीकृत्य अष्टाविंशतिभेदात्मकं ब्रतं आ
 त्मानि संरोष्य कियत्कालं पालितं अधुना
 शीत वात विहृतो भूत्वा तद् ब्रतं भुङ्के वा
 ञ्छसि दारिद्र्योपहतः क्षुधार्तोपि किं स्व
 वान्तमशनं भुङ्के न भुङ्के इति भावः १३

भाषा टीका

हे साधु तूने पहिले केवलि भगवान और
 जैन गुरुं की साक्ष लेकर अष्टादस मूलगुण
 युक्त तिमके नाम अहिंसा १ सत्य २ अचौर्य
 ३ ब्रह्मचर्य ४ अपरिग्रह ५ ये पाँच महाब्र
 त । इत्यो १ भाषा २ एषणा ३ आसन निक्षेप

ण ४ प्रनिष्ठापन ५ ये पाँच सर्भित म्पशनः
 रसन २ घ्राण ३ चक्षुः ४ श्रोत्र ५ इन पाँचों
 इन्द्रियों का अपन अपन विषयमें वनात्कार
 कर रोकना ये पाँच इन्द्रिय विजय छद्म आव
 श्यक तिनका स्वरूप इस ग्रंथकी छटी काव्य
 के टीकामें कियाहै भूमि शयन १ स्नानन्यन
 न २ वनतधावनत्याग ३ वस्त्रज्यजन ४ केश
 लोच ५ उद्गराडुभाहार ६ अल्पभोजन सीभी
 एक दिनमें एकवार व्रतको आप धारणा कि
 या श्रौर कुछ काल लो उसको पाला अत्र
 शीत और वायुकी वेदनासे विह्वल हुवा उ
 सको तोड़ना चाहताहै क्या दीन दरिद्री पुरप।
 भी भ्रुवसे पीड़ित हुवा अपनी वमनको आ
 परवाताहै भावाथे नहीं खाताहै ॥ १३ ॥

भाषाछन्द

आठरु विंशति मूल गुणा तमने मूनि पूर्वमं
 व्रतलीना । देवगुरु जन सारव द्विय धर के
 तिक कालजु पालन कीना । शीतरु वायुत
 ने दुरवसे डर रवंडनमें तिसके चित दीना । टी
 न च्छुधातुरने भिकही निज छदं नना किम भी
 जन कीना ॥ १३ ॥

मूलम

अन्येषां मरणं भवान् गणयन् स्व-
 स्यामरत्वं सदा देहिन् चिन्तय-
 सीन्द्रिय द्विपवशी भूत्वा परिभा-
 स्यसि अद्यश्वः पुनरागमिष्यति
 यमो न ज्ञायते तत्त्वत स्तस्मादात्म-
 हितं कुरु त्वमचिराद्धर्मं जिनेन्द्रो-
 दितम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः

अन्येषां मरणं भवान् अगणयन् स्वस्य अम-
 रत्वं सदा देहिन् चिन्तयसि इन्द्रिय द्विपव-
 शी भूत्वा परिभास्यसि अद्य श्वः पुनर् आ-
 गमिष्यति यमः न ज्ञायते तत्त्वतः तस्मात्
 आत्महितं कुरु त्वं अचिरात् धर्मं जिनेन्द्रोदि-
 तम् ॥ १४ ॥ संस्कृतटीका

[अन्येषां] इतरेषां [मरणं] प्राणवियोगं [भवा-
 न्] वं [अगणयन्] अविचारयन् [स्वस्य] आ-
 त्मनः [अमरत्वं] मरणरहित्यं जीवनत्वमि-
 ति [सदा] शश्वत् [देहिन्] आत्मन् [चिन्तय-
 सि] विचारयसि [इन्द्रिय द्विपवशी भूत्वा] स्व-
 र्मान् रसनं प्राण चक्षुः श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रिया-
 णि तान्पेपगजः तस्य प्रादाकान्तः सित्वा [पर]

भ्रान्त्यसि शक्यत् भ्रमणं कर्गापि पर्यटाम्
 संसारे इति शेषः अद्य वर्तमानं दिनं स्वः
 आगामिनि दिनं पुनः वा परान्तर आगामिष्य
 ति आयास्यति कालः मृत्युः न जायते नाश
 म्यते स्वया इति शेषः तत्त्वतः निश्चयेन तस्मात्
 ततः कारणात् आत्महितं स्वए साधनं कल्या
 णं कुरु विदधातु अविशत् शीघ्रं धर्मं नृपं
 जिनेन्द्रोदितं केवललिना प्रणीतं ॥ १४ ॥

अन्वयः

हे देहिन् भवान् अन्येषां मरणं भ्रमणाय न च
 स्य सदा अमरत्वं चिन्तयसि इन्द्रिय द्विपव
 शी भूत्वा परिभ्राम्यसि तत्त्वतः यमोऽद्य पुनः स्वः
 आगमिष्यति इति न जायते तस्मात् आत्महि
 तं जिनेन्द्रोदितं धर्मत्वं अविशत् कुरु ॥ १४ ॥

भाषा टीका

हे आत्मा तू औरों के मरने को नहीं गिणना
 हुआ सदा अपने तई अमर चिन्त ह इन्द्रिय
 प हाथी का दबाया हुआ भ्रमता फिर हं टीका य
 हं नहीं जानता कि काल आज या कल अब
 प्रय आवेगा इसलिये अपना हितकारि सर्वत्र क
 बली का काला परसं वृ शाघ्र धारण कर १४

भाषाछन्द

औरन कामरना अविचारत तूअ
 पना अमरत्व विचारै । इन्द्रियरू
 प महा गजकावशि भूत भया ।
 भव भ्रान्ति निहारै । आजहि ।
 आवत वा कलके दिन कालनतू
 यह रज्ज्व चितारै । तौ ग्रह धर्म
 जिनेश्वर भाषित भो भव सन्तति
 बेग निवारै ॥ १४ ॥

॥ मूलं ॥

सौरव्यं - अहोऽपि कित्त्वया गतम
 वेदानं तपोवाकृतं । नोचेत्त्वं कि ।
 मिहैव मेवलभसे लब्धं तदत्राग
 तं । धान्यं किं लभते विनापि वप
 नं लोके कुटुम्बीजनी । देहेकीट
 क भक्षितेक्षसदृशे सोहं वृथा
 सा कथाः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः

सौरव्यं वाञ्छसि किम् त्वया गतमर्भवे दानं

तपः वा कृतं नोचते त्वं किम् बुद्धं पञ्चरत्नं
 लभसे लब्धं तदे अत्र आगतं धान्यं किम्
 लभते विना अपि वपनं लोकं कुटुंबी ज
 नः देहं कौटकभक्षितं तु सदृशं माह वृ
 था माहयाः ॥ १५ ॥

संस्कृतटीका

[सौख्यं] आनन्दतां [बाञ्छसि] आकांक्षामि
 [किम्] प्रयोगे [त्वया] भवता [गतभवे] पूर्वस्मि
 न् जन्मनि [दानं] न्यागः तच्चोपध्याहाराभ
 य शास्त्र भेदे अतुर्था अथवा राग द्वेषयोः
 परिहारः [तपः] तपनं तच्च अनशना वमो
 दर्यं व्रतपरिसंख्यानरसपरिन्याग वि
 षक्त शय्यासन कायक्लेशा भेदेः पङ्धाव
 हिरङ्गं प्रायश्चित्त विनयवैया वृत्यस्वाध्या
 य व्युत्सर्ग ध्यान भेदे रन्तरङ्गञ्च पङ्धा
 एवं द्वदशभेदं [वा] पदान्तरं [कृतं] विहितं
 [नोचेत्] अन्यथा [त्वं] भवान् [किम्] नियोधे
 [एवं] इत्थं [एव] निश्चयेन [लभसे] गृह्णा
 सि [लब्धं] प्राप्तं [अत्र] अस्मिन् लोके [आ
 गतं] आयातं [धान्यं] शालिं [किम्] नियोधे
 [लभते] गृह्णानि [विना] वर्जने [अपि] निधा
 रणे [वपनं] अन्नोत्पत्त्यर्थं [भूमौ] शालियवा

हीनां क्षेपणं [लोके] संसारे [कुडुम्बी] कृषाणः
 [जनः] पुरुषः [देहे] शरीरे [कीटकभक्षिते] सु
 सदृशे] क्षमिस्वादिते [इसु दण्ड तुल्ये [मोहं]
 रागं [माकृथाः] माकुरुस्व ॥१५॥

अन्वयः

हे प्राणिन् त्वं सौख्यं वाञ्छसि किन्त्वयागत
 भवे दानं वा तपः कृतं नोचेत् इहि स्व भव
 किम् लभसे यद्दुर्लभ्यं तदत्रागतं लोके कुडु-
 म्बीजनः किं बपनं विनापि धान्यं लभते कीटक
 भक्षिते सु सदृशे देहे वृथा मोहं मा कृथाः ॥१५॥

भाषा टीका

हे जीव तू जो सुख की बाञ्छा करता है क्या
 तूने पूर्व जन्म में दान दिया था वा तप किया
 था जो नहीं किया तो इस लोक में यह सुख-
 तुम्हको कैसे मिले जैसा पूर्व किया था वैसा
 यहां प्राप्त भया संसार में किसान लोग बिना
 बोरा भी कहीं धान्य उताले हैं कीड़े के खाए
 ईश्वर समान इस शरीर में तू वृथा मोह म-
 त कर ॥१५॥

भाषा छन्द

लाहत है सुख क्या पिछले भवदान

दिया अरु समयमन्त्राना । नानरयाभव
 तं सुख प्रापति नान भई सो पुराकृतयो-
 ना । कौटुकभदित इख समान शरीर वि-
 पै तज माह प्रवीना ॥ ३५ ॥

सूत्र्यम्

आयुष्यं तव निद्रयाद्धे मपरं चा-
 युश्चिभेदादहो बालत्वजग्या
 कियद् व्यसनता यार्ताति देहिन
 वृथा निश्चित्यात्मनि माह पाश
 मधुना संछिद्य बोधासिना मुक्ति
 श्रीवनिता वशीकरण मन्त्राग्नि
 माराधय ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः

आयुष्यं तव निद्रया अद्धे अपरं च आयुःनि
 भेदात् अहो बालत्व जग्या कियत् व्यसनतः
 याति इति देहिन वृथा निश्चित्य आत्मान
 माहपाश अधुना संछिद्य बोधासिना मुक्ति
 वनिता वशीकरण मन्त्राग्नि माराधय ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका

[आयुष्यं] जीवनं [तव] ते [निद्रया] स्वप्नेन [अ
 र्द्धं] एकस्य द्वौ भागौ कृत्वा तयोरेको भागः [अ
 परं] द्वितीयो भागः [च] इतरे तरयोगे [आ
 युः] प्राण धारणं जीवनं [त्रिभेदात्] त्रिभिर्भा-
 गैः [अहो] शोके विस्मये वा [बालत्वे] शैश-
 वे अज्ञानदशायां [जरया] वार्धके स्त्रीण शरी-
 रे [कियत्] किञ्चित् [व्यसनतः] विषयसेव-
 नात् तारुण्ये इति भावः [याति] गच्छति [इति] स-
 वं देहिन् [आत्मन्] वृथा [निरर्थकं] निश्चित्य
 निश्चयं कृत्वा दृढीकृत्वा [आत्मनि] स्वस्मि-
 न् [मोहपाशं] रागरज्जुं [अधुना] इदानीं [सं-
 छिद्य] भित्वा [बोधासिना] ज्ञानस्वप्नेण [मु-
 क्तिं श्रीवन्तिता वशीकरणसञ्चारित्रं] मोक्षल-
 क्ष्मीरूपां स्त्रियं वशीकारकं श्रेष्ठाचरणं [आरा-
 धय] गृहाण, धारय ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे देहिन् अहो तव अर्धमायुष्यं निद्रया अ-
 परं चार्द्धं आयुष्यं बालत्वे जरया कियत् व्यस-
 नतः त्रिभेदात् वृथा याति अधुना आत्मनि

एवं निश्चिन्य बाधाभिना श्रेष्ठपाशं मोक्ष-
 द्य मुक्ति श्रीचनिता वर्षाकरण मन्त्राद्यं वा-
 राधय ॥ १६ ॥

भाषाटीका

हे आत्मा शोक या विस्मय का स्थान द्वे नैरा-
 आयु का आधा भाग तो नौद में जाता है और दृ-
 सरा आधा भाग बालपन बुढ़ापा और तरुणाद-
 में तीन भाग होकर दृथा जाता है अवशेष आँप
 में निश्चय करके ज्ञानरूप खड्ग में मोक्षरूप फा-
 सी को काटकर मोक्ष लक्ष्मीरूप त्वीके वर्षाक-
 रण हारे श्रेष्ठ चारित्र्य को धारण कर ॥ १६ ॥

भाषाछन्द

आयुष अर्द्ध अरे मति मन्द व्यतीत भई
 तव नौद मंफारी । अर्द्ध विभाग बुढ़ाप
 न शैशव यौवन के वश व्यथ दिमारी ।
 आत्म में दृढ धार सुधीग्रह ज्ञान अन्ति
 मुहपाश विदारी । मुक्ति रमा रमणा व-
 श कारण हो नित सम्यक चान्ति-
 धारी ॥ १६ ॥

सूत्रम्

यत्काले लघुपात्रमण्डितकरो
भूत्वा परेषां गृहे । भिक्षार्थं भ्रम
से तदा हि भवतो मानापमानेन कि-
म् । भिक्षोतामसद्यत्तितः कदश
नात् किं तप्यसेऽहर्निशम् ।
श्रेयार्थं किल सद्यते मुनिवैरैर्वा
धासुधाद्युद्धवाः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः

यत्काले लघुपात्रमण्डितकरः भूत्वा परेषां
गृहे भिक्षार्थं भ्रमसे तदा हि भवतः मानाप-
मानेन किम् भिक्षोतामसद्यत्तितः कदशना-
त् किं तप्यसे अहर्निशं श्रेयार्थं किल स
द्यते मुनिवैरैः वाधासुधाद्युद्धवाः ॥ १७ ॥

संस्कृतटीका

[यत्काले] यस्मिन् समये [लघुपात्रमण्डितकरः] लघुपात्रेण मण्डितः करोयस्य सुदभाज-
नयुक्तपाणिः [भूत्वा] सित्वा [परेषां] अन्येषां
[गृहे] निवासे [भिक्षार्थं] भोजनाय [भ्रमसे]

गच्छामि भ्रमणं करोमि । तदा । नस्मिन् काले
 हि । याम्ये । भवतः । तव । मानापमाननः । नत्का
 तिरस्काराभ्यां । किम् । किमपिन । भिक्षां । भिक्षाप
 जीविन् । तापसवृत्तितः । तपस्वीनामाचरणान्तः
 । कदशनात् । कुन्मित भोजनात् । किम् । कथं
 । तप्यसे । गेदं प्राप्नोषि । अहर्निशां । दिवारात्रं
 । श्रेयार्थं । कल्याणाय । किल । निश्चयेन । महा
 तैर्भर्ष्यते । मुनिवरैः । मुनिषु वराः श्रेष्ठाः ते । य
 तिश्रेष्ठैः । वाधा । पीडा । सुधाद्युद्धवाः । सुधाभा
 जनेच्छा आदिशब्देन पिपासा दयापि ग्राह्याः
 सुधा आदिर्येषां ते सुधादयः तेभ्यः उद्धवती
 तिसुधाद्युद्धवा ॥ १७ ॥

अन्वयः

हे भिक्षो यत्काले लघुपात्रे सण्डितं कर्म भ्र-
 त्वा त्वमिति शेषः परेषां गृहं भिक्षार्थं भ्रमं मन-
 दाहि भवतो मानापमाननं किम् अहर्निशां ताप-
 सवृत्तितः कदशनात् किं तप्यसे मुनिवरैः कि-
 नु श्रेयार्थं सुधाद्युद्धवा वाधा महान्त ॥ १७ ॥

भाषाटीका

हे भिक्षुक जिस काल मैं लू हाथ मैं छोटा
पात्र लेकर भिक्षाके अर्थ औरोंके घरमें फि-
रता है तिस कालमें तुमको मान और अपमान
सैक्या दिन रात तापस वृत्ति और अशेचक भो-
जन सै क्यो दुखी होता है अपने कल्याणके अ-
र्थ महा मुनि क्षुधा पिपासादि जनित वाधाको
सहसे है ॥ १७ ॥

भाषाच्छन्द

जाक्षण मैं लघु पात्र लिये परग्रेहमें भी-
ख जु मांगन जावै । ताक्षण मैं अपमान रु-
मान कहा तव मानन भीख मागावै । भो मु-
नि तापस हो दिन रैनन अप्रिय भोजन सै
दुख पावै । मुक्त्यमिलाषि महामुनि कष्ट-
सहै हि जु भूखरुप्यास दिखावै ॥ १७ ॥

मूलम

एकाकी विहरत्यन स्थित बलीव
दीयथास्वेच्छया । योषामध्यरत
स्तथा त्वमपि भोत्यक्तात् यूथंय
ते । तस्मिंश्रे दमिलाषतानम

यतः किम्भ्राम्यसिप्रत्यहं । मध्य
साधुजनस्य तिष्ठसि न किं कृत्वा
सदाचारताम् ॥१८॥

पदच्छेदः

रुकाकी विहरति अनस्थितवलीवदः यथा स्वे
च्छया योषामध्यरतः तथा त्वं अपि भो न्यक्त्वा
आत्मयुथं यते तस्मिन् चेतुः अभिज्ञापता
न भवतः किम् भ्राम्यसि प्रत्यहं मध्यः
साधुजनस्य तिष्ठसि न किम् कृत्वा सदा
चारतां ॥१८॥

संस्कृतटीका

[रुकाकी] असहायः) अद्वितीयः [विहरति]
विचरति [अनस्थितवलीवदः] चञ्चलस्य
तिरहितवलिष्टदृषभः । विजार] वृत्तिभाषा
यां । यथा] येन प्रकारेण । स्वेच्छया] आत्मनः का
मनया [योषामध्यरतः] नारीजनेषु दत्तमनाः
[तथा] तेन प्रकारेण । त्वमपि] भवानीपि । भोः
उत्तमसंबोधने । न्यक्त्वा] परित्यज्य । आत्मयु
थं] स्वगणं । यते] मुने । तस्मिन्] नारीमध्ये । चेतुः] य

दि।अभिलाषा।आकांक्षा।न।निषेधे।भवतः।त
 व।किम्।कथं।भ्रास्यसि।भ्रमणं।करोषि।प्रत्य
 हं।प्रतिदिनं।मध्ये।अन्तर।साधुजनस्य।मुनि
 लोकस्य।तिष्ठसि।उपविशसि।कृत्वा।धृत्वा
 ।सदाचारतां।सम्यक् चारित्रं ॥ १८ ॥

अन्वयः

भोयते यथा अनस्थितवलीवर्दः योषा मध्य
 स्तः आत्मयूथं त्यक्त्वा सकाकी स्वेच्छया विह
 रति तथा त्वमपि विहरसि इतिशेषः यदि भ
 वतोभिलाषा तस्मिन् तर्हि इति इतिशेषः प्र
 त्यहं साधुजनस्य मध्ये किं न तिष्ठसि ॥ १८ ॥

भाषाटीका

भोयति जैसे चञ्चल विजार स्वजातीय स्त्रि
 यों में रत हुआ अपने यूथ को छोड़कर इच्छा
 पूर्वक सकला फिरता है तैसे ही तू भी विचरै है जो
 स्त्रियों में तेरी अभिलाषा नहीं है तो प्रतिदिन
 क्यों भ्रमता फिरै है सम्यक् चारित्र को धारण क
 र साधुजनों के मध्य क्यों नहीं रहता ॥ १८ ॥

भाषाठन्ड

सांड समान अनस्थित्वा विचरेषु असं-
 गस्वकृन्द अकला । छाडदियानिजसंग-
 तिको अवलाजन सांकर आपनमेन्ना । जानि
 नमैं अभिलाप नह्यै तबतादिनरेन भ्रम कि-
 मरौला । केषोनरह मुनिसंगति में धर उत्तम-
 चारित पन्थमुहेला ॥ १८ ॥

मूलम्

क्रीतान् भवता भवेत्कदशनंगे
 षस्तदाश्लाघ्यते । भिक्षाया यद
 वाप्यते यतिजनैस्तद्भुज्यतेऽत्पाद
 रात् । भिक्षोभाटकसद्भ्रसन्निभ
 तनोः पुष्टिवृथा माकृत्याः । पूर्णकिं
 दिवसावधौक्षणमापिभ्यातुं यमा
 दास्यति ॥ १८ ॥

पदच्छेदः

क्रीतान् भवता भवेत् कदशनंगेः तदाश्ला-
 घ्यते भिक्षाया यद अवाप्यते यतिजनैः तद्
 भुज्यते अति आदरात् भिक्षोभाटकसद्भ्रस-
 न्निभतनोः पुष्टिवृथा माकृत्या पूर्ण किं दिव-
 सावधौक्षणं आपिभ्यातुं यमः दास्यति ॥ १८ ॥

संस्कृतटीका

[क्रीतान्नं] द्रव्येणग्रहीतं भोजनं [भवता] त्व
 या [भवेत्] स्यात् [कदशनं] अप्रियभोजनं [रो
 षः] क्रोधः [तदा] तस्मिन्काले [प्रग्राध्यते] शो
 भते प्रतिष्ठायाति [मिक्षायां] अर्दनायां [यद्]
 श्रावकजनैर्दत्तभोजनं [अवाप्यते] प्राप्यते [य
 तिजनैः] सुनिलोकैः [तद्] पूर्वोक्तं लब्धभोजनं
 [भुज्यते] भक्ष्यते [अत्यादरात्] बहुसत्कारात्
 [भिक्षो] यते [भाटकसद्म] सन्निभतनाः [तत्त्वा
 मिनं किञ्चिद्धनं दत्त्वा निवासार्थं ग्रहीत गृहे
 ण तुल्यस्य शरीरस्य [पुष्टिं] पोषणं [सक्त्याः]
 माकुरु [पूर्णे] पूर्णतां याते [किम्] निषेधे [दि
 वसावधौ] दिनानामन्ते आयुषन्ते [क्षणं] सम
 यं क्षणस्तु निषेध क्रियायाश्चतुर्थो भागः कालः
 [स्थातुं] स्थिरी भवितुं [यमः] मृत्युः [दास्यति]
 दासिष्यति ॥ १८ ॥

अन्वयः

भो भिक्षो यदि इति शेषः कदशनं भवता क्री-
 तान्नं भवेत् तदा त्वयारोषः प्रग्राध्यते भिक्षायां
 यद् वाप्यते यतिजनैः तदत्यादरात् भुज्यते भा

टक मद्भ्रमनिभतनोः वृथा पुष्टिं भाक्त्याः
दिवसावधापुणं किम् यमः स्यात्तुदम्यति ॥१८॥

भाषाटीका

हे भिक्षुक यदि अस्वादु भोजन तगरामात्र देकर
लिया हुआ होता तुमको क्रोधभी फवद भिक्षामंज
मिलजाता है साधुजन उसको अति आदर सखा
तेहें भाड़ेके घर समान शरीरको वृथा पुष्टमन
करजब आयुके दिनोंको अधीध पूर्ण होजावगा
तबक्या काल टरने देगा ॥१८॥

भाषाछन्द

जो असुहावन भोजन क्रीत किया तब
होय तुरोध भिसो है । साधुनु आदर सं
वहि भुंजत जोकुछ आय पिरापत होवे ॥
भिक्षुक भाटक रोह समानन देहकु पुष्ट
वृथा कर खोवे । पूरण आयु भर क्षणग
क भिना यमराज ठरावनको है ॥१८॥

मूल्यम्

लब्ध्वार्थं यदि धर्मदानविषये
दातुं नयः शक्यत । दारिद्र्यापह
तास्तथापि विषया सन्ति नमुञ्च

नित्ये दृत्वा ये चरणं जिनेन्द्र
गदितं तस्मिन्सदानादरा । तेषां
जन्म निरर्थकं गतमजा कण्ठेस्त
नाकारवत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः

लब्ध्वा अर्थं यदि धर्मदान विषये दातुं न
शक्यते दारिद्र्योपहताः तथापि विषयाश
क्तिं न मुञ्चन्ति ये दृत्वा ये चरणं जिनेन्द्र
गदितं तस्मिन्सदानादराः तेषां जन्म निर
र्थकं गतं अजाकण्ठे स्तनाकारवत् ॥ २० ॥

संस्कृतटीका

[लब्ध्वा] प्राप्य [अर्थं] वित्तं [यदि] चेत् [ध
र्मदान विषये] दृष्टत्यागमध्ये, उत्तमक्षमा
मार्दवार्जवसत्यशौच संयम तपस्त्यागा कि
ञ्चन ब्रह्म चर्याणि एवं दशधा धर्मः दान
ञ्च औषधाहारा भय विद्या भेदान्चतुर्धा [दा
तुं] दासितुं [न] निषेधे [यैः] पुरुषैः [शक्य
ते] समर्थ्यते [दारिद्र्योपहताः] द्रव्या भावेन
संक्लिष्टाः [तथापि] तदपि [विषयासक्तिं] वि
षयलीनतां, शमपरणतिं [न] निषेधे [मुञ्च

न्ति। त्यजन्ति। ये। यपुरुषाः। धृत्वा। अङ्गाक
 ल्य। चरणं। चाग्निं। जिनेन्द्रगदितं। योसर्व
 ज्ञके वन्निना प्रणीतं। तस्मिन्। पूर्वोक्तं चाग्
 निं। सदा। भवस्मिन्काले। नादराः। मन्कारगदि
 ताः। तेषां। पूर्वोक्तपुरुषाणां। जन्म। शरीरधा
 रणं। निरर्थकं। निष्प्रयोजनं। गतं। यानं। अजा
 कण्ठे। छागोगले। स्तनाकारवत्। चूचका कृ
 तितुल्यं ॥ २० ॥

अन्वयः

यदि अर्थलक्ष्णायैः धर्मदानविषयदा
 नुं न शक्यतं यदारिद्र्योपहताः तथापि विष
 याशक्तिं न मुञ्चन्ति ये जिनेन्द्रगदितं चरणं
 धृत्वा तस्मिन् सदा नादराः वर्तन्ते इति श्रे
 षः तेषां जन्म अजाकण्ठे स्तनाकारवत् नि
 रर्थकं गतं ॥ २० ॥

भाषाटीका

जो नर धन को पाकर धर्मदानमें नहीं ल
 गाते हैं और निर्धन हैं तो भी विषयवामनाको
 नहीं छोड़ते हैं और जो भगवत् प्रणीत चाग्
 नि का धारण कर सदा उसमें मन्कार गदिन

वर्तै हैं जिनका जन्म बकरी के गले में चू-
चीके आकार वत् वृथा जाता है ॥ २० ॥

भाषाचन्द्र

जो धन पाय न दान करै अरु धर्म विषे
नहि ताह लुगावैं । होय दरिद्र तथापि
विषातुर छडत नाहि विषे दुख पावैं ।
धार हिये जिन भाषित चारित भाव अ-
नादरता बिचलावैं । जन्म निरर्थ अजा
गल चूचक के समते भुवि भार कहावैं ।

॥ २० ॥

मूल्यम्

लब्ध्वा मानुषजातिमुत्तमकुल
रूपं च नीरोगता । बुद्धिधीधनसे
वनसुचरणश्रीमज्जिनेन्द्रोद्दिता ।
लोभार्थवसुपूर्णहेतुभिरलंस्तो-
कायसौख्यायसो । देहिन्देहसु-
पोतकं गुणभृतं भक्तुं किमिच्छा
स्ति ॥ २१ ॥

पदच्छेदः

लब्ध्वा मानुषजातिं उत्तमकुलं रूपं च नीरो-

गतो बुद्धिर्धौ धनसेवनं सुचरणं श्रीमज्जिने-
 द्रोदितं लोभाय वसुपूर्णहेतुभिः अलं स्तोकाय
 सौख्याय भोः देहिन् देहमुपोत्तकं गुणभूतं भ-
 क्तुं किम् इच्छा अस्ति ते ॥ २१ ॥

संस्कृतटीका

[लब्ध्वा] प्राप्य [मानुषजातिं] नरत्वं [उत्तमकुलं]
 उत्कृष्टसजातीयगणं [रूपं] सौन्दर्यं [च] पुनः
 [नीरोगतां] रोगराहित्यं, कुशलतां, स्वास्थ्यं [बुद्धि-
 ज्ञानं] धौ धनसेवनं धीः बुद्धिरेव धनं येषां तः से-
 वनं प्राज्ञपुरुषैः कृतशश्रूषां [सुचरणं] सम्यक्
 चारित्रं [श्रीमज्जिनेद्रोदितं] समवसरणादिविदि-
 विभूतिभिरनन्तज्ञानदर्शनमुखवीर्य्यरूपरन्तर-
 द्गुश्रियोनाथेन भगवता केवलिना प्रणीतं [लोभा-
 र्थं] ईशायै लोभस्तु चतुर्षु कषायेष्वन्तरंगता च
 तुर्यकषायः [वसुपूर्णहेतुभिः] द्रव्यस्य पूर्ण-
 तायाः कारणैः [अलं] पूर्णं [स्तोकाय] अन्याय
 [सौख्याय] आनन्दाय [देहिन्] आत्मन् [देह-
 मुपोत्तकं] शरीररूपसुष्ठुजलयान् [गुणभूतं]
 गुणान् विभर्तीति गुणभूतं तवागुणः भूतं गुण-
 भूतं [भक्तुं] क्वेतुं [किम्] कथं [इच्छा] वाञ्छा [अ-

स्ति।वर्तते।ते।तव ॥२१॥

अन्वयः

भो देहिन् मानुषजाति उत्तमकुलं रूपं नीरोगतां बुद्धिं धीधनसेवनं श्रीमज्जिनेन्द्रेदितं सुचरणं चलब्ध्वावसु पूर्णं हेतुभिर्लोभार्थं स्तोकाय सारव्याय गुणभृतं देहसुपोतकं भक्तुं ते इच्छा जलं किमस्ति ॥ २१ ॥

भाषाटीका

हे आत्मा मानुषजाति उत्तमकुल रूप नीरोगतां बुद्धि पण्डितजनकृतसेवा समवसरणादिक वाह्य विभूति और अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य रूप अन्तरंग लक्ष्मीके नायक श्रीसर्वज्ञके वली प्रणीत मस्यक् चारित्रको पाकर लोभके अर्थ धनकी पूर्णताके कारण थोड़े सुखके लिये गुणोंके भरे हुए शरीर रूप श्रेष्ठ पोहणके तोड़ने को तेरी इच्छा क्यों भर पूरी होरही है ॥ २१ ॥

भाषाछन्द

पाकर मानुष भौकुल उज्वल सुन्दर रूप
नरामय काया । बुद्धि सुधीजनसंदि
तपाद भयो जिन भाषित चारित पाया

लोभवशीधन सञ्चय कारण भा सुख
किञ्चित् हेतु भ्रमाया । आत्म देह
सुपोत गुणाकरनादि विदारणका च
तलाया ॥ २१ ॥

मूलम्

वेतालाकृतिमर्द्धदग्धसृतकं दृ
ष्ट्वा भवन्त यत । यासानास्तिम-
र्थत्वया सममहोजल्पन्ति तास्त-
त्पुनः । राक्षस्यो भुवने भवन्ति व-
निता मामागता भक्षितुं मत्त्वं
प्रपलाप्यतां मृतिभयात् तत्र मा-
स्थाः क्षणम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः

वेतालाकृतिं अर्द्धदग्ध सृतकं दृष्ट्वा भवन्त य
त यै यासान् अस्ति भय त्वया समं अहो जल्पन्ति
ताः तद् पुनः राक्षस्यः भुवने भवन्ति वनिताः
माम् भक्षितुं आगताः मत्त्वं सर्वं प्रपला-
प्यतां मृतिभयात् त्वं तत्र मास्थाः क्षणम्

॥ २२ ॥

संस्कृत टीका

वेतालाकृतिं प्रेताकारं अर्द्धदशममृतकं अ
 र्द्धमस्मीभूतेन शवेन तुल्यं दृष्ट्वा वीक्ष्य भव
 न्तं त्वां यते मुने यासां स्वीणां नास्ति न विद्य
 ते भयं भीतिः त्वया समं भवता सार्धं अहो
 आश्चर्य्ये जल्पन्ति वचनात्पापं कुर्वन्ति ताः
 स्त्रियः तद् वचनं पुनः द्वितीय वारे राक्षस्यो
 हिंसकाः सुवने लोके भवन्ति सन्ति वनिता
 नार्यः मां स्वं आगताः आयाताः भक्षितुं खा
 दितुं मत्वा निश्चयीकृत्य रात्रौ इत्थं प्रप
 ल्प्यतां धाव मृतिभयात् मृत्योः भीते त्वं
 भवान् तत्र तस्मिन् स्थाने यत्र स्त्रियो भव
 न्ति वास्त्रिषु मास्था मातिष्ठ क्षण समयं
 अल्पकालं ॥ २२ ॥

अन्वयः

भोयते वेतालाकृतिं अर्द्धदशममृतकं भव
 न्तं दृष्ट्वा यासां भयं नास्ति पुनः त्वया समं अ
 हो तद् जल्पन्ति ताः वनिताः सुवने राक्षस्यो भव
 न्ति मां भक्षितुं आगताः एवं मत्वा मृतिभयात् प्र
 ल्प्यतां त्वं तत्र क्षणं मास्थाः ॥ २२ ॥

भाषादीना

भार्यानि जिन स्त्रियोंको प्रताकार अर्थात् जन्म
 तक को समान तुल्यको देखकर भय नहीं जाना औ
 र फिर तर्गो साथ वचनो आप करनी हैं ने नाराओ
 क में राक्षसी हैं से भक्षण करने का अर्थ है
 से मानकर नृ मरण के भय से भाग तर्गो दण-
 माव भी मत ठर ॥ २२ ॥

भाषाच्छन्द

भा सुनि अर्द्धे जले शव तुल्य निहार तु
 न् अरु भूत समाना । भ्रूति नदी जिन
 के घट में पुन चालत तो संग शकल आ-
 ना । राक्षसी हैं वनिता मम भक्षण को उ-
 तर्गो यह जान सुजाना । भाग हिये धर-
 मृत्यु तनो भय तिष्ठन जाँ दण सक प्र-
 माना ॥ २२ ॥

मूलम

मागास्त्वं युवती गृहेषु सततं वि-
 प्रवासतां संशया । विप्रमं जनु
 वाच्यता भवति ते नश्येत् पुमर्थ-
 ह्यतः । स्वाध्यायानुरता गुरुक-
 वचनं शीर्षं समाश्रयं । तिष्ठ

त्वं विकृतिं पुनर्ब्रजसि चेद्यासि
त्वमेव क्षयम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः

मागाः त्वं युवती गृहेषु सततं विश्वासता संशयः
विश्वासे जनवाच्यता भवति तं नश्येत् पुमर्थं हि
अतः स्वाध्यायानुरतः गुरुक्तवचनशीर्षे समारो
पयन् तिष्ठ त्वं विकृतिं पुनर् ब्रजसि च त्वं पासि
त्वमेव क्षयम् ॥ २३ ॥

संस्कृतटीका

[मागाः] मागच्छ [युवती गृहेषु] स्त्रीणां निवा-
सेषु [सततं] निरन्तरं [विश्वासता] अद्भ्यं, प्रत्य-
यं [संशयः] सन्देहः [विश्वासे] अद्भ्यां [जन
वाच्यता] लोकानां कथनी [भवति] स्यात् [ते] तव
[नश्येत्] क्षयेत्, नाशं प्राप्नुयात् [पुमर्थं] पुरु-
षार्थं [हि] निश्चयेन [अतः] अस्मात् हेतोः [स्वा
ध्यायानुरतः] शास्त्राभ्यासेऽनुरक्तः [गुरुक्तव-
चनं] गुरुभिः कथितं वाक्यं [शीर्षे] मस्तके
[समारोपयन्] धारयन् [तिष्ठ] स्थिरीभव [त्वं
] भवान् [विकृतिं] विपरितं [पुनर्] पक्षान्तरे [ब्र
जसि] गच्छसि [चेत्] यदि [यासि] प्राप्नोषि [त्वमे

व) भवानेव (स्यं) नाशं ॥२३॥

उन्वयः

त्वं सततं युवती गृहेषु विश्वासना माताः विश्वा-
समे ते जन वाच्यता संशयान्न भवन्ति पुमर्घ-
हि नश्येत् अतः त्वं स्वाध्याया नुरता गुरुक्त-
वचनं शीघ्रं समाशेषयंस्तिष्ठ चेत् पुनर्विक्र-
तिं व्रजेत् त्वमेव क्षयं यासि ॥ २३ ॥

भाषा टीका

हे मुनि त्‌निरन्तर स्त्रियोंके घरमे विश्वासम-
तकर विश्वासमें तेरी ओड़से सन्देह और लो-
क कहावत होगी और पुरुषार्थ नष्ट होगा ।
इसलिये स्वाध्याय में लीन हुवा गुरुं के कंत्र-
हुवे वचनों को मस्तक पर धार कर तिष्ठ और
जो उलटा चलैगा तौ तेरी ही हानि होगी ॥ २३ ॥

भाषा छन्द

नारिन के घरका विश्वास कदापि न-
चित्त में रञ्चहुं लावे । ताहि किये न-
व ओड़सु संशय हो पुरुषार्थ सब नशा-
वे । होरत पञ्चस्वपादन में गुरु मापित
वेन तु सीस चढावे । जो इसके विप-

रोत चलै मुनि तौ निज नाश करै दुख
पावै ॥ २३ ॥ मूलम्

किं संस्कारशतेन विद्जगतिभोः
काशमीरजं जायते । किन्देहः शु
चितां व्रजेदनुदिनं प्रक्षालनादम्भ
सा । संस्कारे नखदन्तवक्रवपुषां
साधोत्वया युज्यते । नाकामी कि
ल मण्डनप्रिय इति त्वंसार्थकं मा
कृथाः ॥ २४ ॥

पदच्छेदः

किम् संस्कारशतेन विद्जगतिभोः काशमीरजं
जायते किम् देहः शुचितां व्रजेत् अनुदिनं प्रक्षा
लनात् अम्भसा संस्कारः नखदन्तवक्रवपुषां सा
धोत्वया युज्यते न अकामी किल मण्डनप्रि
यः इति त्वंसार्थकं माकृथाः ॥ २४ ॥

संस्कृतटीका

[किम्] वितर्के [संस्कारशतेन] षट्कारस्य श-
तकेन, जल धवनादि क्रियया [विद्] ।

पुरोषं [काशमीरजं] कुंकुमं [जायते] उप्यद्यने
 [देहः] शरीरं [शुचितां] पवित्रतां [व्रजेन] प्राप्नुया
 त्, गच्छन् [अनुदिनं] प्रतिदिनं [प्रक्षालनान्]
 धावनान्, स्नानान् [अम्भस्म] जलेन [संस्का
 रः] शृङ्गारः [नखदन्तवक्रवपुषां] करज
 रदनमुखशरीराणां [साधो] यते [त्वया]
 भवता [युज्यते] कियते [नाकामी] न अका
 मी, कामीतिभावः ; विषयामक्तः [किञ्च]
 निश्चयेन [मण्डनप्रियः] मण्डनभयणं प्रियं
 यस्यसः शृङ्गारभिलाषी [इति] गवं [सार्थ
 कं] अर्थयुक्तं [माकृत्याः] सावुक्तः आत्मान
 मिति शेषः ॥ २४ ॥

अन्वयः

भो साधो किं संस्कारशतेन जगति विद
 काशमीरजं जायते किन्देहोऽनुदिनं अम्भ
 सा प्रक्षालनान् शुचितां व्रजेन नखदन्त
 वक्रवपुषां संस्कारः त्वया युज्यते त्वम-
 ण्डनप्रियः अकामीन किञ्च इति सार्थकं
 माकृत्याः ॥ २४ ॥

भाषाटीका

भो मुनि क्या सौ संस्कार सै भी जगतमें वि-
 छाकेसर होजाता है क्या शरीर प्रति दिन
 के स्नान से शुद्ध होजाता है । नख दात मु-
 ख शरीर का शृंगार जोतूकरता है तौतू मंडन
 प्रिय है अकामी नहीं है यह सार्थक नाम
 मत रखवा ॥ २४ ॥

भाषाछन्द

क्या जगमें विट संस्कृति सौ कर चन्दन
 केसर वा बनजावै । त्यों यह देहन न्हा
 न किये प्रति वासर के शुचिता दुक पा-
 वै । संस्कृति दन्तनकी नखकी मुख
 की वपुकी यह बात जनावै । है न अ-
 कामितु मण्डन पीतम ना यह सार्थक
 नाम धरावै ॥ २४ ॥

मूलम

वृत्तैर्विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैः
 सल्लक्षणी नान्वितै । ग्रंथसज्ज
 नचित्तबल्लभमिमंश्रीमल्लिप
 रागोदितं । श्रुत्वात्मेन्द्रियकुञ्ज
 रान् समटतोरुन्धन्तुतेदुर्जरान्

निवृत्तानां विषयादर्थापु सततं संसा
रविच्छिनय ॥ २५ ॥

पदच्छेदः

वृत्तः विंशतिभिः चतुर्भिः आधिकैः सद्दक्षिण
न अन्वितः ग्रन्थं सज्जनचित्तवत्त्वमं उच्यते
मल्लिषेण उदितं श्रुत्वा आत्मन्द्रियकुञ्जगण
ममदतः रुन्धन्तुने दुर्गगणं विद्वांसः विषय
द्वयापु सततं संसा रविच्छिनय ॥ २५ ॥

संस्कृतटीका

[वृत्तः] छन्दोभिः [विंशतिभिश्चतुर्भिर्गधिकैः
चतुर्विंशतिभिः [सद्दक्षिणेन] अष्टकथने-
न कर्तव्याकर्तव्यव्यवहारेण [अन्वितः]
युक्तैः [ग्रन्थं] शासनं [सज्जनचित्तवत्त्वमं]
सज्जनानां सत्पुरुषाणां चित्तस्य मनसा चत्त्व
मं प्रियं वा सज्जनचित्तवत्त्वमं नाम धर्म्यं ।
[इमं] पूर्वोक्तं ग्रन्थं [श्रीमल्लिषेणेन] शास्त्र-
रूपलक्ष्याः नाथेन मल्लिषेणाभिधेयं ना
चार्य्येण [उदितं] प्रकाशितं [श्रुत्वा]
निशम्य [आत्मन्द्रियकुञ्जगणः] स्वस्य

करण हस्तिनः [समटतः] विचरतः [रुन्ध-
न्तु] वशीकुर्वन्तु [दुर्जरान्] दुःस्वेन कष्टेन ज-
रा जीर्णतायेषां तान्, कष्टसाध्यान् [विद्वां
सः] पण्डिताः [विषयाटवीषु] स्पर्श रस
गंध वर्ण शब्दाः विषयाः ते एव अटव्यः
वनानि तेषु [सततं] निरन्तरं [संसारविच्छि-
त्तये] जगतो नाशाय ॥ २५ ॥

अन्वयः

ये इति शेषः विद्वांसः ते इमं ग्रन्थं श्रु-
त्वा आत्मेन्द्रिय कुञ्जरान् रुन्धन्तु कथ-
म्भूतं ग्रन्थं श्रीमल्लिषेणोदितं कैः चतु-
र्भिरधिकैर्विंशतिभिर्वृत्तैः कथम्भूतैः स-
ल्लक्षणान्वितैः कथम्भूतं ग्रन्थं संबन्ध-
नवत्तु वल्लभं कथम्भूतान् आत्मेन्द्रिय कुञ्ज-
रान् विषयाटवीषु सततं समटतः पुनर्दु-
जरान् ॥ २५ ॥

भाषाटीका

विद्वान् पुरुष चौबीस प्रलोक में श्रीमल्लि-
षेणाचार्य के बनाए हुवे इस श्रेष्ठ ल-
क्षण युक्त ग्रन्थ को सुनकर अपनी इ-

न्द्रिय रूप नाथियों को जो विषय रूप शब्द
वी में चारों ओड़ फिरने हैं और दुर्जर में से
सार के नाश के हेतु शोको ॥ २५ ॥

भाषाकृन्द

बीमरु चार प्रलोकन में यत्न उत्तम न्द्रा
ण युक्त नवीना । सज्जन चित्त प्रियः य
रकाव्य रचा मालिषण यदा हित काना ।
आत्म इन्द्रिय दुर्जर कुंजर जे विषयाद
विमें नित लोना । या मुनक वशि आन
तिन्ह जग विच्छिति हेत सुधी गुण पा-
ना ॥ २५ ॥

टीकाकार कवि

कुलदंशवर्णनं

कृन्दकृष्यय

भारत वर्ष मरार देश पञ्जाव मुविस्तन । न
मध दिह्री जिना मरुत्त जनका आनद कान ।
नाके उत्तर मध्य नगर मुनपत भय भञ्जन ।

ता मध चार जिनेश भवन भवि जन मन रञ्ज
न । तिस नगर माहि मम बास है । मिह-
चन्द्र मम नामवर । हूँ पण्डित मथुरादास-
का । लघु भ्राता लघु ज्ञान धर ॥ ॥

चौपाई

तीन अल्प बुद्धि अनुसार ॥
संस्कृत भाषा छन्द मंगार ॥
बाल बोधनी टीका सार ॥
स्वीन पण्डित जन हितकार
न्यून शतक दो सहस्र मंगार
क्षेपो अधिक सप्तदश चार
शुक्ल त्रयोदश कार्तिक मास
चन्द्र बार दिन कियो प्रकाश

दोहा

है पण्डित जन प्रतियही एक प्रार्थना मूल ॥
देख दोष शुद्ध कीजिये, अवगुण गहँ न भूल ॥

इति

